ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून २०१५

Date of Printing = 05-06-15
प्रकाशन दिनांक= 05-06-15

वर्ष ४४ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- पंचयज्ञ सुखकारी 2
- वेदोपदेश 3
- स्वाध्याय का महत्व 4
- साहित्य समीक्षा 6
- अध्यात्म ज्ञान.... 7
- मन्त्र गीत..... 9
- महर्षि दयानन्द.... 11
- अपनी महिमा..... 13
- स्वात्मा की पहचान 15
- ईश्वर की सत्ता व स्वरूप 19
- हे युवा..... 23
- आर्यावर्त का ऋषि स्वप्न.... 25
- वैराग्य का महत्व 27

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

पंचयज्ञ सुखकारी

(पं. नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद पलवल हरियाणा)

पंचयज्ञ रोजाना करना, शुरु करो नर-नारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनों, फिर यह दुनिया सारी।।

पहला यज्ञ है ब्रह्मयज्ञ, सब ईश्वर गुण गाओ।
जगतपिता है जग का स्वामी, उसे नही बिसराओ।।
शाम सवेरे बड़े प्रेम से, परमेश्वर को ध्याओ।
बनो आस्तिक प्रभुभक्त तुम, जीवन सफल बनाओ।।

जग का पालक है वह अद्‌भुत, दयावान न्यायकारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनो, फिर यह दुनिया सारी।।

देवयज्ञ है यज्ञ दूसरा, जग में हवन कहाता।
होता विश्व सुगंधित जिससे, प्रदूषण मिट जाता।।
जो करते हैं यज्ञ पास मे, रोग ना उनके आता।
बड़ा भाग्यशाली है याज्ञिक दीर्घायु वह पाता।।

घर-घर में सब यज्ञ रचाओ, देव यज्ञ सुखकारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनो, फिर यह दुनिया सारी।।

मात-पिता की सेवा करना, पितृयज्ञ कहाता।
मात-पिता के सेवक को, देता है सुफल विधाता।।
मात-पिता आचार्य-जनों की जो करते सेवा।
सुखी सदा जीवन में रहते, पाते सच्ची सेवा।।

देव लोक पाते हैं सज्जन, कहते वेदाचारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनो, फिर यह दुनिया सारी।।

चौथा यज्ञ बलिवैश्वदेव सब दयावान बन जाओ।
मानव हो मानवता धारो, काम जगत के आओ।।
चींटी से हाथी तक सबको, खुश होकर दो भोजन।
बनो तपस्वी, त्यागी, धर्मी, होंगे प्रभु के दर्शन।।

राम, कृष्ण, चाणक्य, शिवा से, बनो वीर व्रतधारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनो, फिर यह दुनिया सारी।।

अतिथियज्ञ है यज्ञ पाँचवा, घर आए यदि सज्जन।
साधु सन्तों, विद्वानों का, स्वागत करो लगा मन।।
ज्ञान प्राप्त कर विद्वानों से, बन जाओ तुम ज्ञानी।
पंच यज्ञ सुखकारी, स्वामी दयानन्द ने मानी।।

"नन्दलाल" नित वेद पढ़ो तुम, सुख पाओगे भारी।
बन जाएगी स्वर्ग सज्जनो, फिर यह दुनिया सारी।।

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश विद्वान् लोग प्रज्ञा और बल प्राप्त होने वाली रात्रि को सिद्ध करें और पवित्र बल वाले मित्र और हिंसकों के हिंसक धार्मिक पुरुष को स्वीकार करें।

मधुच्छन्दाः ऋषिः। मित्रावरुणौ (प्राणोदानौ) देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।

पुनस्तमेव विषयमाह।।

विद्वान् लोग क्या करें, यह फिर उपदेश किया है।

ओ३म् **मित्रꣳहुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।**
धियं घृताचीꣳ साधन्ता।। यजु० ३३/५७।।

पदार्थः **(मित्रम्)** सुहृदम् **(हुवे)** स्वीकरोमि **(पूतदक्षम्)** पवित्रबलम् **(वरुणम्)** धार्मिकम् **(च)** **(रिशादसम्)** हिंसकानां हिंसकम् **(धियम्)** प्रज्ञाम् **(घृताचीम्)** या घृतमुदकमञ्चति तां रात्रिम्। घृताचीति रात्रिनाम् **(निघं० १/७)** **(साधन्ता)** साधन्तौ।

सपदार्थान्वयः हे मनुष्याः यथाऽहं **(धियम्)** प्रज्ञाम् **(घृताचीम्)** या घृतम् उदकमञ्चति तां रात्रिं च **(साधन्ता)** साधन्तौ **(पूतदक्षम्)** पवित्रबलं **(मित्रम्)** सुहृदम् **(रिशादसम्)** हिंसकानां हिंसकम् **(वरुणम्)** धामिकं च **(हुवे)** स्वीकरोमि, **तथेतौ यूयमपि स्वीकुरुत्**।।

भाषार्थ : हे मनुष्यो! जैसे मैं **(धियम्)** प्रज्ञा और **(घृताचीम्)** घृत= जल को प्राप्त होने वाली रात्रि को **(साधन्ता)** सिद्ध करने वाले प्राण और उदान को तथा **(पूतदक्षम्)** पवित्र बल वाले **(मित्रम्)** मित्र **(रिशादसम्)** हिंसकों के हिंसक और **(वरुणम्)** धार्मिक पुरुष को **(हुवे)** स्वीकार करता हूँ, उन्हें तुम भी स्वीकार करो।

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्राणोदानौ प्रज्ञां रात्रिं च साध्नुतः तथा विद्वांसः सर्वाण्युत्तमानि साधनानि गृहीत्वा कार्यसिद्धिं कुर्वन्तु।

भावार्थः इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे प्राण और उदान, प्रज्ञा और रात्रि को सिद्ध करते हैं, वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों को लेकर कार्यों की सिद्धि करें।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

स्वाध्याय का महत्व

(धर्मपाल आर्य)

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। शास्त्रों को पढ़ना, पढ़ाना, सुनना और सुनाना उपनिषदों को पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना, जो जीवन की पहेली को सुलझाने वाले सद्ग्रन्थ हैं उनको पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, जीवन और जगत के रहस्य को समझने वाले ग्रन्थों को पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, जीवन निर्माण करने वाले ग्रन्थों को पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना तथा समस्त समस्याओं को सुलझाने वाले ग्रन्थों को पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना हम सब आर्यों का परम धर्म है। यदि मैं कहूँ कि स्वाध्याय को ही ऋषिवर ने हम आर्यों का परम धर्म कहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हमारे वैदिक संस्कृति का स्वाध्याय एक प्रमुख अंग है। स्वाध्याय हमारे जीवन का आधार स्तम्भ है। स्वाध्याय हमारे लौकिक पारलौकिक जीवन का सफल व सशक्त साधन है। स्वाध्याय हमारी अलौकिक शक्ति है। स्वाध्याय हमारी सनातन सांस्कृतिक विरासत है। मैं इतिहास की बात कहूँ, तो हमने समाज से प्रचलित असंख्यों मत मतान्तरों पर स्वाध्याय के बल पर ऐतिहासिक विजय प्राप्त की है। स्वाध्याय की महिमा का दर्शन क्या, उपनिषद्, क्या शतपथ ब्राह्मण, क्या मनुस्मृति क्या सब बखान कर रहे हैं। उपनिषद् में आचार्य शिष्य को उपदेश करते हुए निर्देश देते हैं कि "स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदः अर्थात् हे ब्रह्मचारिन्! तू स्वाध्याय और प्रवचन (पढ़ने और पढ़ाने) से अपने जीवन में कभी प्रमाद मत करना। स्वाध्याय सर्वाङ्गीण विकास की सीढ़ी है। प्रश्न है कि स्वाध्याय किसे कहते हैं? योग दर्शन में स्वाध्याय की बड़ी सुन्दर और सटीक परिभाषा दी है। आचार्य पतञ्जलि योगदर्शन में परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "स्वाध्यायो मोक्षशर्शात्राणामध्ययनं प्रणव जपो वा।" अर्थात् मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले शास्त्रों का अध्ययन करना और प्रणव (ओ३म्) और गायत्री आदि पवित्र मन्त्रों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय के फल का महर्षि पतञ्जलि कुछ इस तरह वर्णन करते हैं कि "स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः"। अर्थात् स्वाध्याय करने से देवों, ऋषियों तथा सिद्धों के दर्शन स्वाध्यायशील योगी को होते हैं और वे उस योगी के कार्य में (सहायक) होते हैं। महर्षि दयानन्द अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में उपनिषद् का प्रमाण देते हुए हम सबको स्वाध्याय की प्रेरणा देते हुए कहते हैं "यथार्थ आचरण से, सत्याचार से, सत्य विद्याओं को, धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को, बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरण से रोकते हुए, मन की वृति को सब प्रकार के दोषों से हटाकर, अग्नि और विद्युत् आदि को जानते हुए, अग्निहोत्र करते हुए, अतिथियों की सेवा करते हुए मनुष्य सम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए, सन्तान और राज्यों का पालन करते हुए, वीर्य की रक्षा करते और वृद्धि करते हुए तथा अपने सन्तान ओर शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते और पढ़ाते जायें अर्थात् सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक, व्यक्तिगत ओर सार्वजनिक कार्य करते हुए भी स्वाध्याय का कार्य अवश्य करना चाहिए। ब्राह्मण को भी स्वाध्याय करना चाहिए, क्षत्रिय को भी स्वाध्याय करना चाहिए। आचार्य को, ब्रह्मचारी को, गृहस्थी को, स्त्री को, पुरुष को, वृद्ध को, युवा को, माता को, पिता को, भाई और बहिन को पुत्र को और पुत्री को सबको स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए क्योंकि ''स्वाध्याययोग-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशतो।'' अर्थात् स्वाध्याय और योग की समृद्धि से परमात्मा का प्रकाश होता है। राजा जनक की सभा में यदि याज्ञवल्क्य

विद्वानों की सभा में सब पर भारी पड़ते हैं तो इसका एकमात्र कारण है स्वाध्याय। यदि ऋषि याज्ञवल्क्य को वाचक्नवी गार्गी विद्धत्सभा में चुनौती देने का साहस करती हैं तो इसका एकमात्र कारण है स्वाध्याय। दुनिया में प्रचलित मतमतान्तरों के धुरन्धरों को ऋषिवर दयानन्द जी ने परास्त किया तो केवल योग साधना और स्वाध्याय के बल पर। स्वामी श्रद्धानन्द और पण्डिल लेखराम ने अपने विरोधियों को शास्त्रार्थ समर में हराया था तो इसका एकमात्र कारण था स्वाध्याय। यदि पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों को परास्त किया था तो केवल और केवल स्वाध्याय के बल पर। स्वाध्याय की महिमा का बयान करते हुए आचार्य याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण में लिखते हैं, "यावन्तं ह वा इमां पृथ्वी वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति त्रिस्तावन्तं जयति य एव विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते-तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः अर्थात् धन से परिपूर्ण इस पृथ्वी का दान करके पुरुष को जिस पुण्य लोक (सुख विशेष) का लाभ होता है उसे तीन गुणा अर्थात् सर्वविधि शान्तिरूप सुख उसे मिलता है जो समझदार व्यक्ति प्रतिदिन स्वाध्याय करता है। इसलिए प्रतिदिन सवाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय न करने से अर्थात् सद्ग्रन्थों को न पढ़ने से, न पढ़ाने से, वेदों को न पढ़ने से न पढ़ाने से, आत्मचिन्तन न करने से, ईश्वर चिन्तन न करने से, धर्म शास्त्रों, दर्शनों को न पढ़ने से, न पढ़ाने स समाज की, राष्ट्र की, व्यक्ति को कितनी बड़ी क्षति होती है इसका वर्णन करते हुए आचार्य याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण में लिखते हैं "यन्ति वा आपः। एत्यादित्यः। एति चन्द्रमाः। यन्ति नक्षत्राणि। यथा ह वा एता नेयुर्नकुर्युः। एवं हैव तदहब्रह्मणो भवति। यदहः स्वाध्यायं नाधीते। तस्माद् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।" अर्थात् पानी चल रहा है, सूर्य, चन्द्रमा भी गतिमान् हैं, नक्षत्र भी घूम रहे हैं। यदि ये देवता अपना काम बन्द कर दें तो निश्चित रूप से अनर्थ होगा। जैसा ही अनर्थ, विनाश उस दिन होता है, जिस दिन यथार्थ ज्ञान का इच्छुक व्यक्ति स्वाध्याय नहीं करता; उस दिन मानो सूर्य भी नहीं निकला, चन्द्रमा का उदय नहीं हुआ; पानी ने बहना बन्द कर दिया। भाव यह है कि स्वाध्याय (आत्मचिन्तन) हीन पुरुष को यह चमकता सूर्य कल्याण का मार्ग नहीं दिखा सकता; स्वाध्यायहीन पुरुष के ताप को चन्द्रमा की चाँदनी नहीं हर सकती; गंगा का पवित्र जल भी उस (स्वाध्यायहीन) पुरुष की अशान्ति पिपासा का शमन नहीं कर सकता अतः अशान्ति पिपासा के शमन के लिए तथा महाअनर्थ विनाश से बचने के लिए मनुष्य को "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः अर्थात् दत्तचित्त, एकाग्रचित्त श्रद्धापूर्वक निरन्तर स्वाध्याय करना चाहिए। कई महानुभाव जब कहते हैं कि कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्" ऋषिवर का सपना कैसे साकार होगा तो मेरा उनको एक ही उत्तर हेता है कि हम सब वेदों को पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, शास्त्रों, दर्शनों, उपनिषदों अन्य आर्षग्रन्थों को पढ़ने पढ़ाने और सुनने-सुनाने के परम धर्म का तन्मयता से पालन करना "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" ऋषि के सपने को साकार करने का सबसे सशक्त, सबसे सटीक, सबसे सफल साधन स्वाध्याय, स्वाध्याय केवल और केवल स्वाध्याय ही है। यदि हम वेद विद्या का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं, यदि हम सामाजिक चेतना लाना चाहते हैं, यदि हम जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करना चाहते हैं, यदि हम नास्तिकता के अँधेरे को मिटा कर आस्तिकता का प्रकाश करना चाहते हैं, यदि हम जीवन को आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न करना चाहते हैं तथा यदि हम जीवन को जीने की कला के साथ-साथ जीवन को जानना चाहते हैं तो इसका एकमात्र साधन स्वाध्याय है। स्वाध्याय हमारे जीवन की वो संजीवनी है, जो हमारी मृत वाणी में, हमारे मृत चिन्तन में, हमारी मृत दृष्टि में, हमारे मृत विचारों में तथा हमारे मृत व्यवहार में अमृत का सञ्चार करता है। आर्य समाज ने स्वाध्याय के बल पर समस्त पाखण्डियों को, विधर्मियों को, जैनियों को, बौद्धों को, कबीर पन्थियों को, दादूपन्थियों को, पुरानियों को, कुरानियों

शेष पृष्ठ 22 पर

साहित्य समीक्षा

(दिनेश कु. शास्त्री, कार्या. व्यवस्थापक : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट)

पुस्तक का नाम	:-	स्मृतियों की यात्रा (भाग-2)
लेखक	:-	श्री प्रां० राजेन्द्र जिज्ञासु
प्रकाशक	:-	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर आबोहर (पंजाब) - 152116
मूल्य	:-	200 रु.

250 से अभी अधिक खोजपूर्ण, रोचक, प्रेरणाप्रद व ज्ञानवर्धक पुस्तकों के प्रेणेता श्री प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु की यह कृति कई दशकों का इतिहास संजोये हुए है। "पत्रों के दर्पण में" शीर्षक से कई महत्वपूर्ण पत्र देकर "इतिहास के हस्ताक्षर" सुरक्षित कर दिये गये हैं। इतिहास में रुचि रखने वाले इस महत्वपूर्ण कार्य की महत्ता व उपयोगिता सहजतया समझ सकते हैं।

अन्धविश्वास पर प्रहार :- पण्डागिरी आर्यसमाज में भी जड़ जमाने के लिए प्रयासरत है। इसका प्रमाण है- "महामृत्युन्जय मन्त्र का पाठ"। कई लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई है कि इस मन्त्र के पाठ से आयु-वृद्धि होती है, नीरोगता प्रापत होती है। विद्वान् लेखक ने जोरदार तर्क व प्रत्यक्ष प्रमाण देकर इसका खण्डन किया है। नाम देना न तो आवश्यक है और न उचित ही। असल में हुआ ये कि एक सुप्रसिद्ध संन्यासी की दीर्घायु के लिए "मृत्युञ्जय पाठ" रखवाया गया, लेकिन परिणाम विपरीत रहा। इस कर्मकाण्ड के ब्रह्मा स्वयं ही असमय चल बसे।

एक अबूझ पहेली :- हास्य विनोद भी महापुरुषों का एक गुण है। स्वामी वेदानन्द तीर्थी जी ने किसी प्रसंग में "गुरुकुल सुराही" की चर्चा ब्र. जगदीश विद्यार्थी से की तो वे चक्कर में ही पड़ गये और वे ही क्यों शायद बहुत कम लोग ही इस पहेली का उत्तर जानते होंगे। वस्तुतः स्वामी जी झज्जर को मनोविनोद में सुराही कह रहे थे।

प्रचार का अद्भुत तरीका :- असल में हुआ ये कि किसी महामानव ने जिज्ञासु जी व इनके साथियों को प्रचार के लिए बुला तो लिया परन्तु प्रचार नहीं कराया, तो इन्होंने पहले अनशन किया। भोजन-दूध आदि ग्रहण नहीं किया लकिन फिर भी बात बनी नहीं अब इन्होंने अपने दम पर प्रभात फेरी निकालने का निर्णय लिया। इनके एक साथी के दाढ़ी थी और लाठी भी रखते थे। जिज्ञासु जी का ऐसा सोचना था कि दाढ़ी वालों को आगे रखेंगे, तो इन्हें देखकर कुत्ते भौकेंगे और जब कुत्ते भौकेंगे तो लोग घर से बाहर निकल कर पता करेंगे कि कुत्ते क्यों भौंक रहे हैं। जब लोग बाहर निकलेंगे तो मैं प्रचार करूँगा। इनकी यह योजना पूरी तरह सफल रही। कुत्ते लाठी देखकर इनके पीछे पड़ गये। स्त्रियाँ पुरुष द्वार खोल-खोल कर देखते थे कि हो क्या रहा है और ये एक-एक चौक पर अपना प्रचार करते गये। है न प्रचार करने की अद्भुत विधि और जनून!

आगे की कहानी भी बड़ी मजेदार है। जब ये लोग प्रभात फेरी निकाल कर मन्दिर वापिस आए तो लोगों का आना-जाना प्रारम्भ हो गया। इन्होंने प्रसाद के लिए अपने पैसों से बताशे मंगवाए और मन्दिर से निकलने वाले बच्चों से कहा "आओ! बाबाजी के चरण-स्पर्श कर नमस्ते करके प्रसाद लेते जाओ।" दाढ़ी वालों को महात्मा बनाकर चारपाई पर बैठा दिया। बच्चे आते गये और नमस्ते कहकर प्रसाद लेते गये। यह योजना भी सफल रही। बातों ही बातों में बच्चों को वैदिक अभिवादन का पाठ पढ़ा दिया/याद करा दिया।

समापन भी सुखद रहा। जैसे-कैसे यज्ञ सम्पन्न हो गया। लोग खूब एकत्र हुए। अब पौराणिक पेट-पन्थियों ने, जो सर्वथा निरक्षर से थे, इनमें प्रश्नोत्तर ना शुरू कर दिया। यह एक विचित्र सा शास्त्रार्थ था क्योंकि विराधियों के पास युक्ति, तर्क व प्रमाण जैसी कोई वस्तु तो थी ही नहीं फिर भी वे जी भर कर उलझे। गनीमत ये रही कि पिटाई-धुनाई नहीं हुई। इस घटना को पढ़कर मुझे किसी कवि की यह पंक्ति याद आ रही है-

बाधाएँ कब रोक सकी हैं, आगे बढ़ने वालों को।

हम वयोवृद्ध/ज्ञानवृद्ध सम्मान्य विद्वान् लेखक के सुन्दर स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की कामना करते हैं।

अध्यात्म-ज्ञान मोक्ष का मार्ग है।

(आचार्य डॉ. प्रमोद योगार्थी, ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

हे भगवन्! आपकी सुगन्धि, आपकी सत्ता का अनुभव सृष्टि के कण-कण में हो रहा है। आप ही पुष्टिकारक हो, संसार का संचालन करने वाले हो और उत्पत्ति, पालन व संहार करने वाले हो। आपकी हम स्तुति करते हैं, आपका गुणगान करते हैं, आपको पुकारते हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमें मृत्यु से ऐसे छुड़ा दो, जैसे पका हुआ खरबूजा अपनी लता से स्वयं ही छूट जाता हैं परन्तु अमृत से, अपने आनन्द से हमें वंचित न करना। अपने सानिन्ध्य से हमें कभी मत छुड़ाना।

इस मन्त्र में अध्यात्म शिक्षा की पराकाष्ठा है। अध्यात्मक विद्या को समझाने के लिए खरबूजे का उदाहरण अतुलनीय है। कच्चे खरबूजे और पके खरबूजे में कई असमानताएँ होती हैं कच्चा खरबूजा बन्धन का प्रतीक है और पका खरबूजा मुक्ति का प्रतीक है। खरबूजे से निम्न शिक्षाएँ मिलती हैं-

(क) छूटने के लिए पकना आवश्यक :- जब तक खरबूजा कच्चा रहता है तब तक वह अपनी डाली से जुड़ा रहता है। उसे तोड़ना भी चाहेंगे तो वह सम्पूर्ण रीति से डाली से अलग नहीं होगा। खरबूजे के साथ डाली भी खिंची चली आती है लेकिन जब खरबूजा पक जाता है तो वह स्वतः ही डाली को छोड़ देता है। उसे तोड़ने या छुड़ाने आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह आत्मा यदि बंधन से मुक्त होना चाहता है तो उसे अध्यात्म विद्या से पकना होगा। अध्यात्म विद्या से पका हुआ आत्मा स्वयं ही अपने शरीर का परित्याग बिना किसी दुःख/कष्ट के कर देगा। अतः अध्यात्म के द्वारा पकना आवश्यक है।

(ख) पकने के लिए जुड़ना आवश्यक :- यदि आत्मा पकना चाहता है, अध्यात्म की ऊंचाइयों को छूना चाहता है, बंधन से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करना चाहता है, तो उसे खरबूजे की भांति मानव शरीर से जुड़ना होगा। जब मानव शरीर मिल जाए तो उसे अध्यात्म मार्ग पर चलना होगा। तभी वह पक सकेगा। मानव का शरीर मिल गया और अध्यात्म साधना नहीं की तो मनुष्य देहधारी आत्मा की बहुत बड़ी हानि होगी। अतः हम जुड़ तो गए हैं, मानव शरीर तो मिल गया है अब छूटने के लिए खरबूजे की भांति अध्यात्मक विद्या से पकने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

जब ईश्वर को प्राप्त कर आत्मा परिपक्व हो जाता है, तो उसमें निम्न विशेषताएँ आ जाती हैं

1. जब खरबूजा पक जाता है तो वह स्वयं ही डाली से पृथक हो जाता है। कच्चा खरबूजा अपनी लता से, अपनी डण्ठल से जुड़ा रहता है यदि डाल का कोई स्सिा खरबूजे के साथ आ रहा है तो यह खरबूजे के कच्चेपन की निशानी है। ठीक ऐसे ही मुमुक्षु व्यक्ति भी यह देखे कि संसार से मुक्त होते हुए कोई वासना मेरे साथ तो नहीं आ रही है, यदि वासना का एक तार भी मेरे साथ है तो वह बंधन का कारण होगा। अतः संसार की वासनाओं का सर्वथा छूट जाना अध्यात्म साधक की पहली विशेषता है।

खरबूजा पकने की दूसरी पहचान है- गन्ध। जब तक खरबूजा कच्चा रहता है, उसमें कोई गन्ध नहीं आती और जब वह पक जाता है तो उसमें सुगन्ध आने लगती है। उसकी सुगन्ध आस-पास में फैलने लगती

है। ठीक ऐसे ही मुक्ति के अधिकारी अध्यात्म विद्या के साधक के गुणों की सुगन्धि दूर-दूर तक फैलने लगती है।

3. पके खरबूजे का रूप रंग बदल जाता है। कच्चे खरबूजे का रंग आकर्षक नहीं करता, परन्तु पका खरबूजा आकर्षित रंग-रूप वाला हो जाता हैं इसी प्रकार अध्यात्म विद्या से पके हुए साधक का व्यक्तित्व प्रभावित करता है। उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोग भी बदलने लगते हैं/ उस जैसा बनने की इच्छा करने लगते हैं। साधक की संगत में बैठने के लिए लालायित रहते हैं। यह कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। ऐसे ही **अध्यात्म विद्या से** परिपक्व साधक के सम्पर्क में आने वाले अन्य मनुष्यों में बदलाव आने लगता है। वे भी अध्यात्म मार्ग पर चलने के लिए उत्सुक हो जाते हैं।

4. पके खरबूजी की चौथी विशेषता यह है कि **खरबूजे में उसका रस समा नहीं पाता। वह फूट-फूट कर बहने लगता है।** मानो वह कहता है कि मेरी सुगन्ध और रूप पर ही मोहित मत होना। मेरे हृदय को टटोल कर देखो। उसमें रस ही रस भरा है। इसी तरह अध्यात्म साधक जहां अपने गुणों से, अपने रूप से आकर्षित करता है, वहीं अध्यात्म विद्या रूपी रस की धारा भी उसके अन्दर फूट पड़ती है। उसके उपदेश को सुनकर लोग तृप्त हो जाते हैं। बाहर से भी आकर्षण है और अन्दर से भी वह सरस हो जाता है। अन्दर बाहर एक जैसा रहता है। बाहर कुछ और अन्दर कुछ और, यह पाखण्ड की पहचान है। ऐसा व्यक्ति अध्यात्म साधक नहीं हो सकता। वह ठग हो सकता है। अतः बाहर से भी आकर्षक और आन्तरिक व्यवहार से भी आकर्षक जो होता है, वह अध्यात्म साधक कहलाता है।

5. पके हुए खरबूजे में मधु रस तो होता ही है पर वह रस खट्टा, तीख या कड़वा नहीं होता अपितु मधुर ही होता है। पका हुआ खरबूजा माधुर्य रस से भरा होता है। ठीक इसी तरह से अध्यात्म परिपक्व साधन का हृदय भी, उसका **अन्तःकरण भी माधुर्य रस से भरा हुआ होता है।**

6. पके हुए खरबूजे में जहाँ रस की माधुर्यता होती है वहीं वह खरबूजा अन्दर से एक रूप, एक रंग, एक रस वाला हो जाता है। बाहर की विविधता का उसके अन्तः करण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ठीक ऐसे ही अध्यात्म साधक के अन्तः करण पर बाहर के अपने-पराये का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह सुख-दुःख आदि, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितयों में एक जैसा रहता है।

7. पके खरबूजे के सारे बीज एकत्रित हो जाते हैं। वे बीज खरबूजे की दीवारों से सर्वथा अलग होकर एकत्रित हो जाते हैं। ठीक ऐसे ही अध्यात्म साधक की विषय वासनाओं के संस्कार सर्वथा छूट जाते हैं। अन्तःकरण में गुप्त विषय संस्कार भी उस साधक को छोड़ देते हैं।

8. खरबूजा एक ओर अपनी डाली से जुड़ा रहता है, ठीक उस डण्ठल के विपरीत खरबूजे में कुछ फूल जैसा जुड़ा रहता है। जिसे खरबूजे की मूँछ कहा जाता है। जैसे ही खरबूजा पकने लगता है तो उसकी मूँछ सूखने लगती है, ऐसे ही जब जीवन फल की तृष्णा रूपी मूंछ सूखने लगे, तो समझ लें अब छूटने का समय हो गया है, मुक्ति प्राप्ति का समय आ गया है। केशों के साथ-साथ हमारी तृष्णाएँ भी सूख जानी चाहिए। तभी मोक्ष के अधिकारी बन सकते हैं।

9. खरबूजे की कच्ची अवस्था में उसकी तरफ अंगुली से इशारा करेंगे तो वह सड़ जाएगा, सूख जाएगा, खत्म हो जाएगा। यदि उसे हाथ से छूओगे,

शेष पृष्ठ 18 पर

मन्त्र गीत-श्रुतिकृत सुत दुहिता

(देवनारायण भारद्वाज, 'देवातिथि' अलीगढ़-202001 उ.प्र.)

प्रभु रवि की दुहिता आई है। ऊषा आकर मुस्काई है।।
कौन बड़ा है प्रभु से त्वष्टा।
शिल्पी जग सुन्दर का सृष्टा।
विश्व भुवन निर्माण नृत्य कर,
देता सौम्य शौर्य उत्कृष्टा।
ना न्यून नहीं अधिकाई है। ऊषा आकर मुस्काई है।। 1।।
भगनी ऊषा दिन भ्राता है।
रजनी जननी से नाता है।
प्रभुवर की सतत् सहचरी है,
जो निशा दिवस की माता है।
करती अघतिमिर विदाई है। ऊषा आकर मुस्काई है।। 2।।
वर दिनकर की रजनी वरनी।
मिलकर करते दोनों करनी।
संयत संगत नर निर्माता,
ब्रह्म वालियाँ कर आचरनी।
की श्रुति ने स्नेह सगाई है। ऊषा आकर मुस्काई है।। 3।।

स्रोत : त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्यह्यमाना महो जाया विस्वतो ननाश।। (अथर्व. 18.1.53)

❑❑

मन्त्र गीत-प्रभु और प्रकृति

सदा सुरक्षक वही तुम्हारे। प्रभु नाम मनन करले प्यारे।।
तुम पकड़ रहे संसार अरे।
जो तुम्हें धकेले दूर परे।
जो तुम्हें छोड़ता नहीं कभी,
तू पकड़ उन्हीं की बाँह नरे।
प्रकृति प्रलोभन दूर भगा रे। प्रभु नाम मनन करले प्यारे।। 1।।
बड़ी कठिन प्रभु नाम डगर है।

पर प्रभु का सुखधाम अमर है।
यह प्रकृति सुन्दरी बनी परी,
फैलाती आयाम मगर है।
साधु सुसंयम सत्य सहारे। प्रभु नाम मनन करले प्यारे।।2।।
प्रभु प्रीतम ही दर्शनीय हैं।
उदय हृदय आनन्दनीय हैं।
प्रकृति रूपसी के मदहन्ता,
वही सभी के वन्दनीय हैं।
गुण धारण उन्हें मना रे। प्रभु नाम मनन करले प्यारे।।3।।
स्रोत : दुर्मन्त्वत्रामृंतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरुपा भवाति।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्।। (अथर्व. 18.1.34)

❑❑

मन्त्र गीत-नगर नगर की डगर

लख पितर प्रतिष्ठा मगर चलो। तुम नगर नगर की डगर चलो।।
प्रिय पितर पूर्वज जिधर चले।
ले साथ शक्ति वह प्रखर चले।
आदर्श उन्हीं का सम्मुख रख,
ले साथ सत्य के शिखर चले।
उल्लास उदय कर मधुर चलो। तुम नगर नगर की डगर चलो।।1।।
आरण्य ओर यदि जाओ तुम।
मत कोंपल को कुम्हलाओ तुम।
वन का सौन्दर्य सुरक्षित हो,
ऐसी बस्तियाँ बसाओ तुम।
करते वसन्त हर शिशिर चलो तुम नगर नगर की डगर चलो।।2।।
यम और नियम का शासन हो
स्नेह समन्वय अनुशासन हो
हो ओर छोर शोभायमान,
सुख श्रेष्ठ बिछ रहा आसन हो
तज द्वेष ताप अघ तिमिर चलो तुम नगर नगर की डगर चलो।।3।।
स्रोत- प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तो यमं पश्यामि वरुणं च देवम्।। (अथर्व.18.1.54)

❑❑

महर्षि दयानन्द की अध्ययन-अध्यापन संबंधी कुछ शिक्षायें

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

महर्षि दयानन्द वेदों के अनुपम विद्वान् और समाज सुधारक थे। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और धर्म-कर्म की दृष्टि से सभी संसार के मनुष्यों द्वारा वैदिक ज्ञान व कर्मों का पालन ही उचित व आवश्यक है अन्यथा वह जीवन के उद्देश्य, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकते। इस विषय को महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में प्रश्नोत्तर शैली व तर्क व प्रमाण के आधार पर सिद्ध किया है जिसका सभी को अध्ययन करना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने बालकों, जवानों एवं वृद्धों के लिए समान रूप से उपयोगी शिक्षा एक पुस्तक **"व्यवहारभानुः"** की रचना की है। इस पुस्तक की शिक्षायें अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। यह पुस्तक अपनी उपमा आप ही है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में महर्षि दयानन्द ने उत्तम विचारों को प्रस्तुत किया है। आइये, इसका अवलोकन व अमृतपान कर लेते हैं। वह लिखते हैं कि मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्तता है, उसको सर्वत्र सुखलाभ और जो विपरीत वर्तता है वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है। देखिए, जब कोई सभ्य मनुष्य विद्वानों की सभा में वा किसी के पास जाकर अपनी योग्यता के अनुसार नमस्ते आदि करके बैठके दूसरे की बात ध्यान से सुन, उसका सिद्धान्त जान-निरभिमानी होकर युक्त प्रत्युत्तर करता हे, तब सज्जन लोग प्रसन्न होकर उसका सतकार और जो अण्ड-बण्ड बकता है, उसका तिरस्कार करते हैं। जब मनुष्य धार्मिक होता है, तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और जब अधर्मी होता है तब उसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते। इससे जो थोड़ी विद्या वाला भी मनुष्य श्रेष्ठ विद्या पाकर सुशील होता है उसका कोई भी कार्य नहीं बिगड़ता। सब मनुष्यों को उत्तम शिक्षा और सभी विद्यार्थियों का आचार अत्युत्तम करने के लिए महर्षि दयानन्द ने व्यवहारभानु पुस्तक की रचना की है।

महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि ऐसा कौन सा मनुष्य होगा कि जो सुखों को सिद्ध करने वाले व्यवहारों को छोड़कर उलटा आचरण करे। क्या यथायोग्य व्यवहार किये बिना किसी को सर्वसुख हो सकता है? क्या कोई मनुष्य है जो अपनी और अपने पुत्रादि सम्बन्धियों की उन्नति न चाहता हो? इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि श्रेष्ठ शिक्षा और धर्मयुक्त व्यवहारों से वर्तकर सुखी होके दुःखों का विनाश करें। क्या कोई मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्मार्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नहीं कर सकता और इसके बिना पशु के समान होकर दुःखी नहीं रहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने बालक से लेके वृद्धपर्यन्त मनुष्यों के सुधार के अर्थ यह व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया है।

मनुष्य जीवन के सुधार में मुख्य भूमिका माता-पिता के बाद आचार्य व शिक्षकों की होती है। कैसे पुरुष पढ़ाने और शिक्षा करने हारे होने चाहिये? इस प्रश्न को प्रस्तुत कर इसके उत्तर में वह कहते हैं कि पढ़ाने वालों को

'आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।'

अर्थात् जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगों, सुखदुःखादि का सहन, धर्म का नित्य सेवन करनेवाला, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ाकर अधर्म की ओर न खेंच सके, वह पण्डित कहाता है। शिक्षकों में यह अनिवार्य गुण होने चाहिये। आगे वह कहते हैं कि

'निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते। अनास्तिकः श्रद्धावान् एतत् पण्डितलक्षणम्।'

अर्थात् जो सदा प्रशस्त, धर्मयुक्त कर्मों का कभी न सेवनेहारा, न कदापि ईश्वर, वेद और धर्म का विरोधी और परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है, वही मनुष्य पण्डित के लक्षण युक्त होता है और वही अध्यापक व शिक्षक होने योग्य है।

'क्षिप्रं विजानाति चिरं श्रृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्। नासंपृष्टो ह्युपयुंक्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।'

अर्थ : जो वेदादि शास्त्र और दूसरे के कहे अभिप्राय को शीघ्र ही जानने, दीर्घकालपर्यन्त वेदादि शास्त्र और धार्मिक विद्वानों के वचनों को ध्यान देकर सुनके ठीक-ठीक समझकर निरभिमानी, शान्त होकर दूसरों से प्रत्युत्तर करने, परमेश्वर में तन, मन, धन से प्रवृतमान होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय शाकादि दुष्टगुणों से पृथक वर्तमान, किसी के पूछे बिना वा दो व्यक्तियों के संवाद में बिना प्रसंग के अयुक्त भाषणादि व्यवहार न करने वाला है, वही पण्डित की बुद्धिमत्ता का प्रथम लक्षण है और ऐसे मनुष्य ही आचार्य वा बालकों को पढ़ाने वाले होने चाहिये। इसके बाद प्रस्तुत तीन श्लोकों के हिन्दी अर्थ करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करते, किसी पदार्थ के अदृष्ट वा नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर शोक नहीं करते और बड़े-बड़े दुःखों से युक्त व्यवहारों की प्राप्ति में भी मूढ़ होकर नहीं घबराते हैं वे मनुष्य पण्डितों की बुद्धि युक्त कहलाते है व शिक्षक होने के योग्य हैं। जिसकी वाणी सब विद्याओं में चलनेवाली, अत्यन्त अद्भुत विद्याओं की कथाओं को करने, बिना जाने पदार्थों को तर्क से शीघ्र जानने-जनाने, सुनी-विचारी विधाओं को सदा उपस्थित रखने और जो सब विद्याओं के ग्रन्थों को अन्य मनुष्यों को शीघ्र पढ़ाने वाला मनुष्य है, वही पण्डित कहाता है। जिसकी सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा अनुकूल और बुद्धि और क्रिया सुनी-पढ़ी विद्याओं के अनुसार, जो धार्मिक, श्रेष्ठ पुरूषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्ट-डाकुओं की रीति को विदीर्ण-करनेहारा मनुष्य है, वही पण्डित नाम से सम्बोधित करने योग्य होकर अध्यापन का कार्य कर सकता है।

उपर्युक्त श्लोकों व उनके हिन्दी अर्थों में पण्डितों के लक्षण बताकर महर्षि दयानन्द कहते हैं कि जहाँ ऐसे सत्पुरुष पढ़ाने और बुद्धिमान पढ़नेवाले होते हैं वहां विद्या, धर्म की वृद्धि होकर सदा आनन्द ही बढ़ता जाता है और जहां मूढ़ पढ़ने-पढ़ानेहारे होते हैं, वहां अविद्या और अधर्म की वृद्धि होकर दुःख बढ़ता ही जाता है। इस कारण वह कहते हैं कि जिन लोगों को न पढ़ाना और न उपदेश करना चाहिये उन लोगों में वह लोग हैं जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान् का उपदेश न सुनकर बड़े घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े-बडे़ कामों की इच्छा करने हारे और बिना परिश्रम के पदार्थों की प्राप्ति में उत्साही होते हैं ऐसे मनुष्य को विद्वान् लोग मूर्ख कहते हैं। यहां महर्षि दयानन्द ने दृष्टान्त रूप से शेखचिल्ली की कथा लिख कर कुछ महतवपूर्ण वचन प्रस्तुत किये हैं जो विस्तृत होने के कारण पुस्तक **'व्यवहारभानु'** में ही देखने उचित हैं

विद्या पढ़ने व पढ़ाने वालों को किन दोषों से मुक्त होना चाहिये उसका प्रकाश करते हुए कहा है कि आलस्य, नशा करना, मूढ़ता, चपलता, व्यर्थ इधर-उधर की अण्ड बण्ड बातें करना, जड़ता-कभी पढ़ना कभी न पढ़ना अभिमान और लोभ-लालच ये सात विद्यार्थियों के लिए विद्या के विरोधी दोष हैं, क्योंकि जिसको सुख चैन करने की इच्छा है उसको विद्या कहां और जिसका चित्त विद्याग्रहण करने-कराने में लगा है उसको विषय-सम्बन्ध सुख-चैन कहाँ? इसलिए विषय-सुखार्थी विद्या को छोड़े और विद्यार्भि विषयसुख से अवश्य अलग रहें, नहीं तो परम धर्मरूप विद्या का पढ़ना-पढ़ाना कभी नहीं हो सकता। विद्यार्थियों और शिक्षकों के दोषों का ज्ञान कराकर कैसे मनुष्य विद्या प्राप्ति कर और करा सकते हैं उनका वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द ने महाभारत से भीष्म व युधिष्ठिर संवाद प्रस्तुत कर लिखा है कि भीष्म जी ने राजा युधिष्ठिर को कहा कि हे राजन्! तू ब्रह्मचर्य के

शेष पृष्ठ 18 पर

अपनी महिमा स्वयं बनो

- महात्मा चैतन्यमुनि

वेद में कहीं पर भी आपको किसी प्रकार का निराशाजनक चिन्तन नहीं मिलेगा बल्कि वेद में जीवन को जीने के ऐसे सूत्र दिए गए हैं जो हताश और निराश व्यक्ति को भी कर्मशीलता की ओर प्रेरित करते हैं। वैसे भी जीवन में व्यक्ति को कठिन से कठिन परिस्थिति में भी निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि मनुष्य को परमात्मा की श्रेष्ठतम कृति बताया गया है। जीवन एक कर्मक्षेत्र है तथा कर्म के द्वारा हम बड़ी से बड़ी उपलब्धि को भी प्राप्त कर सकते हैं। वेद का एक सिद्धान्त है कि जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र मगर फल भोगने में परतन्त्र है। एक प्रकार से देखें तो परमात्मा ने कर्म की स्वतन्त्रता देकर सर्वाधिकार हमें ही प्रदान कर दिए हैं। अब इस स्वतन्त्रता का उपयोग हम जीवन के उत्थान के लिए करते हैं या पतन के लिए यह हमारे अपने ज्ञान, विवेक और प्रतिभा पर ही निर्भर करता है। जीवात्मा की कर्म-स्वतन्त्रता ही बता रही है कि हम अपने भाग्य के स्वयं ही निर्माता है। अतः हमें अपने जीवन को सुकर्मों के साथ जोड़कर स्यं अपने भाग्य का निर्माता बनना है। वेद में बहुत ही सुन्दर प्रेरणा देते हुए कहा या है'

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।। (यजु. 23-15) मन्त्र में कहा गया है कि हे आत्मा! तू क्रियाशील व शक्तिशाली है, तू अपने शरीर को शक्तिशाली बना और शक्तिशाली बनकर अपने जीवन को यज्ञमयी भावना से ओतप्रोत कर दे। बहुत ही समर्पण, प्रेम और श्रद्धा के साथ परमात्मा की उपासना कर। ऐसा करने से किसी दूसरे से तेरी महिमा नष्ट नहीं हो सकती अर्थात् तेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

वेद में बहुत सुन्दर एवं उत्कृष्ट प्रेरणा दी गई है। स्वयं को कभी भी दीन-हीन नहीं समझना चाहिए क्योंकि व्यक्ति का आत्मस्वरूप समस्त गुणों से परिपूर्ण है, बस उन गुणों को उद्‌बुध करने की आवश्यकता है। हमें सदा ही अपवित्रताओं को त्यागकर अपने स्वरूप में ही बने रहना चाहिए। आत्मा की श्रेष्ठता इसी बात में है कि वह सदा भद्रता के साथ ही जुड़ी रहे। यही नहीं बल्कि अपने स्वरूप में रहने का एक बहुत ही श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट भाव यह भी है कि हमें सदा ही आत्मा के स्तर पर जीना चाहिए। आत्मा का निज स्वरूप शुद्ध, बुद्ध और पवित्र है। फ्रायड ने एक स्थान पर बहुत ही सार्थक बात कही है 'वह व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता है जो यह नहीं जानता कि उसे क्या चाहिए। हमें क्या चाहिए यह हम तब तक नहीं जान सकते हैं जब तक यह न जाने कि हम है कौन? यदि हम शरीर मात्र है तब तो हम शरीर के स्तर पर ही जीऐंगे। हमारी समस्त क्रियाएँ केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूव्रि तक ही सीमित रहेंगी मगर जब हम इस स्तर पर जिएंगे कि मैं शरीर के अतिरिक्त शुद्ध, बुद्ध और पवित्र आत्मा हूँ तो हमारी समस्त क्रियाएँ केवल और केवल पवित्रता के साथ ही जुड़ जायेंगी। हम सत्य और धर्म के साथ ही जुड़ जाऐंगे क्योंकि आत्मा का निज स्वभाव वही है। हम ऐसे किसी भी कार्य से समझौता नहीं करेंगे जिससे हमारी आत्मा पर कुसंस्कार पड़ेंगे.. .. चाहे कितना ही बड़ा लाभ हो रहा हो मगर हम सदा ही सावधान रहेंगे..।

आत्मा के इस स्वरूप में जीने में ही हमारी महिमा है और इस महिमा को बनाने के लिए ही वेद मन्त्र में

कुछ महत्वूपर्ण बातें कही गई है। कहा है- (स्वयं वाजिन्) अर्थात् व्यक्ति को जीवन में सदा ही क्रियाशील बने रहना चाहिए और अपनी शक्तिशालीनता को भी निरन्तर ही बढ़ाते रहना चाहिए। उसे (तन्वम् कल्पयस्व) अपने शरीर को शक्तिशाली तो बनाना है मगर वह शक्ति किसी प्रकार के विध्वंस के लिए नहीं होनी चाहिए बल्कि सृजनशीलता के लिए होनी चाहिए। इस प्रकार की मानवतावादी, त्याग, प्रेम, सौहार्द और समरसता की भावना तभी हो सकती है जब व्यक्ति (स्वयं यजस्व) स्वयं को यज्ञमयी भावनाओं से परिपूर्ण करेगा। उसे सदा ही 'इदम् न मम्' की भावना से ओत-प्रोत होने की आवश्यकता है। इस प्रकार का जीवन और इस प्रकार की भावना प्रभु उपासना से स्वतः प्राप्त हो जाती है इसलिए आगे कहा गया (स्वयं जुषस्व) कि व्यक्ति को सदा ही प्रीतिपूर्वक परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। उपासक व्यक्ति स्वाभावकि रूप से ही प्राणीमात्र के प्रति संवेदनशील बन जाता है। वह मनुष्य तो क्या किसी भी प्राणी को दुःखी नहीं देख सकता है। उपासक अत्यधिक संवेदनशील होता है.... जब व्यक्ति उपरोक्त गुणों को अपने जीवन में आत्मसात् कर लेगा तो फिर (अन्येन ते महिमा न सन्नशे) किसी दूसरे से उसकी महिमा नष्ट नहीं हो सकती है अर्थात् उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। भला जो व्यक्ति अपने स्वरूप अर्थात अपने आत्मस्तर को सुरक्षित रखने के लिए इस प्रकार के कार्य करेगा उसका पराभव कोई कैसे कर सकता है। मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि हम अपनी सब प्रकार की शक्तियों का संवर्धन करें और फिर उनसे संसार का उपकार करते हुए परमात्मा की उपासना में लगे रहें। यही जीवन का सार है तााि ऐसा व्यक्ति ही अपने आप को संसार में महिमामयी बनाता है। उसके जीते-जी तो उसकी महिमा होती ही है मगर संसार से जाने के बाद भी ऐसे व्यक्ति की महिमा सदा बनी रहती है....

अथर्ववेद में भी आत्मा को उद्बोधित करते हुए उसकी शक्ति के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार के उत्कृष्ट विचार कहे गए हैं- शुकोऽसि भ्राजोऽसि स्व रसि ज्योतिरसि। आप्तुहि श्रेयांसमति समं काम।। (अ. 2-11-5) मन्त्र में कहा गया है (शुक्रः असि) तू पवित्र व शक्तिशाली बना है... अर्थात् अपने शरीर को स्वस्थ और पवित्र बना। (भ्राजः असि) तुझे परमात्मा ने चमकदार अर्थात् उत्तम एवं शक्तिशाली इन्द्रियाँ और मन दिया है अतः तू इन्हें पवित्र बनाकर जीवन को सार्थक बना। हमें अपने कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों से पवित्र ही कर्म करने चाहिए और यह तभी संभव हो सकेगा, जब हम अपने मन को संयमित करेंगे अतः अपने मन को संकल्पशील बनाकर साधना-उपासना की ओर लगाना चाहिए। (स्वः असि) तुझे प्रभु ने ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करने वाला बनाया है। हमें अपनी वाणी का सदुपयोग करना आना चाहिए क्योंकि इसी से हमें सुख व आनन्द की प्राप्ति होगी। वाणी का सदुपयोग हम तभी कर सकेंगे जब हमारा मस्तिष्क ज्ञान से परिपूर्ण होगा। अतः हमें वेदादि आर्ष ग्रन्थों का निरन्तर स्वाध्याय करके अपनी वाणी को ओजस्वी, पवित्र, शालीन और सत्य से परिपूर्ण बनाना चाहिए। (ज्योतिः असि) तू ज्ञान से जगमगा रहा है अर्थात् तुझे सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से स्वयं को सुसज्जित करके अपनी आत्मज्योति को जगमगाना है. ... उसे निरन्तर प्रज्वलित रखना है जब व्यक्ति अपना व्यक्तित्व इस प्रकार का बना लेगा, तो फिर वह (आप्रूहि श्रेयांसम्) अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त करेगा अर्थात् सात्विक भावों के कारण उसकी मैत्री उच्च विचार वालों के साथ स्थापित हो जाऐगी और वह अपने बराबर वालों से (समम् अतिकाम) बहुत आगे निकल जाएगा. ... वह अपने उपरोक्त गुणों के आधार पर स्वयं ही संसार में अपनी महिमा स्थापित कर लेगा।

❑❑

स्वात्मा की पहचान

(उत्तरा नेरूरकर, बंगलौर)

छान्दोग्योपनिषद् के अन्त में उपनिषद् का सबसे गूढ़ विषय एक रोचक कथानक द्वारा बताया गया है। इसमें जीवात्मा की पहचान, या खोज, के विषय में बताया गया है। इसकी वयाख्या शब्दशः तो प्राप्त होती है, परन्तु तात्पर्य सहित मैंने नहीं देखी। और जीवात्मा व परमात्मा के अर्थों में अदल-बदल भी पाई जाती है, जैसे मैंने छान्दोग्य के विषय पर अपने एक पूर्व लेख में भी दर्शाया था। इस लेख में यह कथानक, उसके वाक्यों का तात्पर्य और कथा के गूढ़ अर्थ दे रही हूँ।

यह आख्यायिका छान्दोग्य के अष्टम प्रपाठक के सातवें से पन्द्रहवें खण्ड में आती है। प्रथम, प्रजापति नामक कोई विख्यात ऋषि कहते हैं, "जो आत्मा पापों से, बुढ़ापे से, मृत्यु से, शोक से, भूख और प्यास से अछूता है, जिसकी कामनाएँ सत्य होती हैं और संकल्प सत्य होते हैं, वह ढूँढने योग्य है। जो उसको प्राप्त करके जान लेता है, वह सब लोकों को और सारी इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है।" क्योंकि यहां 'पापरहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प' विशेषण प्रयोग किए गए हैं, यहाँ 'आत्मा' का अर्थ परमात्मा कया जाता है। परन्तु, जैसा हम कथानक में आगे देखेंगे, यहाँ अर्थ जीवात्मा ही है, और प्रजापति उसी को ढूँढने का उपाय बताते हैं।

यह बात देवों और असुरों के कानों तक पहुँची और उन दोनों में इस आत्मा को जानने की लालसा हुई। उन्होंने क्रमशः इन्द्र और विरोचन को अपना प्रतिनिधि बनाकर प्रजापति के पास भेजा। वे दोनों, बिना एक-दूसरे से बात करते हुए, अर्थात् एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हुए, प्रजापति के पास, हाथ में समिधा लेकर, उपस्थित हुए।

जैसा कि उस समय प्रथा थी, वे दोनों प्रजापति के आश्रम में बत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रहे। तब प्रजापति ने उनको बुलाया और पूछा, "किस इच्छा से आप यहाँ रह रहे हैं?" दोनों ने बताया कि जिस आत्मा की चर्चा आपने की थी, जिसको आपने अन्वेषण-योग्य बताया, उसके विषय में आपसे जानने आए हैं।

प्रजापति ने उन दोनों से कहा, "जो यह पुरुष (-आत्मा) आंखों में दिखता है, वह आत्मा है। वह अमृत है, अभय है, ब्रह्म है।" यहां भी 'आत्मा' का अर्थ परमात्मा किया गया है, परन्तु स्पष्टतः यह जीवात्मा के बारे में ही कहा गया है, क्योंकि हम सभी जानते हैं कि जीव की आँखों में उसकी आत्मा की झलक पाई जाती है। मृत शरीर या कृत्रिम शरीर में हमें इसके दर्शन नहीं होते। यदि परमात्मा की बात हो रही होती, तो वे मृत शरीर और कृत्रिम शरीर में भी दिखते, क्योंकि वे तो सर्वविद्यमान् हैं।

इन्द्र और विरोचन को सन्देह हुआ- "जो पुरुष जल, या फिर दर्पण की परछाई में दिखाई पड़ता है या जो आपने आँखों में बताया, इनमें से कौन-सा आत्मा है?" प्रजापति बोले, "ये सभी वही हैं। तुम दोनों अपने को जल के पात्र में देखो। फिर यदि तुम्हें आत्मा न समझ में आए, तो मुझे बताओ।" दोनों ने ऐसा ही किया, पर सन्देह बना रहा और वे कुछ न बोले। प्रजापति ने पूछा, "क्या देखते हो?" वे बोले, "हे भगवन्! हम रोम तक, नाखूनों तक अपने प्रतिरूप को देखते हैं।"

तो प्रजापति ने उनको कहा, "नहा-धोकर, सुन्दर कपड़े पहनकर, अपने को अलंकृत कर अपने को इस जलपात्र में दोबारा देखो।" उन दोनों ने वैसा ही किया। प्रजापति ने पुनः पूछा, "क्या देखते हो?" उन्होंने कहा, "हे भगवन्! जैसे हम साफ-सुथरे, सुन्दर वस्त्र व आभूषण पहने हैं, वैसी ही यह परछाई है।" तो प्रजापति बोले,

यह वह अमृत, अभय, ब्रह्म आत्मा है।" दोनों का सन्देह समाप्त हो गया और वे शान्तहृदय हो वापस निकल पड़े। यहाँ इन्द्र और विरोचन ने जो समझा वह इस प्रकार है। साधारण अवस्था में और शुद्ध अवस्था में अन्दर का शरीर एक ही रहा। यह देखकर दोनों समझ गए कि यह शरीर ही वह आत्मा है जिसके गुणगान प्रजापति ने किए थे। इसलिए प्रजापति अपने से बोले, "ये दोनों आत्मा (अपने) को प्राप्त किए बिना जा रहे हैं। देव या असुर, जो भी इनके वचन सुनेगा, वह परास्त होगा।" प्रजापति ने पूर्व में तो आँखों में स्थित पुरुष को आत्मा कहा था, परन्तु इन्द्र और विरोचन के प्रश्न से उन्हें ज्ञात हुआ कि इन दोनों को तो आत्मा के विषय में क्या, शरीर के विषय में भी कुछ नहीं ज्ञात है! वे जल और दर्पण में दिखती परछाई को अलग-अलग मानते हैं। इसलिए उन्होंने उनको इतना ही ज्ञान दिया कि जो शरीर तुम जल में देखते हो, या दर्पण में, वह तुम्हारा ही है। उसके बाह्य वस्त्रादि बदल सकते हैं, परन्तु जो अन्दर का शरीर है, वह समान रहता है।

विरोचन, सन्देह-रहित होकर, असुरों के पास पहुंचा और उनसे बोला, "आत्मा (-शरीर) ही इस लोक में सबसे महान है। उसी को पूजकर, उसका सेवन करके दोनों लोकों - पृथिवी लोक और स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लोगे।" (अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाले आत्मा के) शरीर को भोग्य पदार्थों से, सुन्दर परिधान से, आभूषणों से सुसंस्कृत करते हैं, और मानते हैं कि इससे हमें स्वर्ग प्राप्त हो जायेगा। वस्तुतः, दान और यज्ञ हमें तत्काल सुख नहीं पहुँचाते। हो सकता है कि उनका फल अगले जन्मों में ही मिले। सो, जिसे परमात्मा में विश्वास नहीं, उसकी व्यवस्था में विश्वास नहीं, उसे इन सब कर्मों से भी कोई सरोकार नहीं। वे जन, जैसे कि हम आज अधिकता से पाते हैं, वैदिक दृष्टिकोण में असुर ही हैं। यह मूढ़ावस्था की प्रथम दशा है।

अब इन्द्र वापस जाते-जाते सोचते हैं, "जो यह आत्मा (-शरीर) अच्छे अलंकार पहनने पर अलंकृत हो गया, जो अच्छे वस्त्र पहनने पर सुवसन हो गया, वही इसके अन्धा होने पर अन्धा हो जायेगा, काना होने पर काना, लंगड़ा-लूला होने पर वैसा ही हो जायेगा। इसी प्रकार इस शरीर के नष्ट हो जाने पर नष्ट भी हो जायेगा। तो फिर, वह जो अजर, अमर, आदि हमें आत्मा बताया गया था, वह यह तो नहीं हो सकता!" यह सोचकर वे सन्देह से पुनः ग्रस्त हो गए और वापस प्रजापति के पास पहुँच गए।

प्रजापति ने उनकी शंका को समझकर, उन्हें पुनः बत्तीस वर्ष ब्रह्मचारी होकर आश्रम में वास करने को कहा। उतने वर्ष बीत जाने पर, उन्होंने इन्द्र को कहा, "जो यह स्वप्न में महिमा को प्राप्त करता है, वही आत्मा है, वही अमृत, अभय और ब्रह्म है।" क्योंकि यह आत्मा जल में नहीं दिखता, अन्धे होने पर भी अन्धा नहीं होता, आदि, इन्द्र इस ज्ञान से सन्तुष्ट हो गए और देवों को ओर लौट पड़े।

मार्ग में ही, उन्हें फिर विचार आया कि जबकि स्वप्न की आत्मा शरीर के अन्धे होने पर अन्धा नहीं होता, न अन्य किसी विकलांगता को प्राप्त होता है, न शरीर के ताड़न से यह ताड़ित होता है, तथापि, स्वप्न ही में, यह कभी जैसे मरने या ताडन के डर से भागता सा है, अप्रिय समाचार को जानता सा है, रोता सा है। तब यह अजर, अमर, अीाय कैसे है? कभी -कभी हम यह मान कर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि यह प्रत्यक्ष संसार तो दुःखों से भरा है, परन्तु स्वप्नावस्था में हमें सुख प्रापत होता है; सो वही सत्य है, यह संसार मिथ्या है। कई आलसी लोग सो कर ही आधा जीवन व्यतीत कर देते हैं। फिर हमें इन्द्र जैसा सोचकर इस विचार में दोष देखना चाहिए।

वे, समित्पाणि होकर, पुनः प्रजापति के पास पहुँच गए, और उन्हें अपने संशय से अवगत कराया। प्रजापति

ने उनको बत्तीस वर्ष और रुकने को कहा। उसके अनन्तर, प्रजापति बोले, "जो सुषुप्ति की अवस्था में 'समस्त' अपने में अवस्थित हो जाता है/ बाहरी जगत् से दूर जो जाता है, भली प्रकार से प्रसन्न रहता है, इस संसार का स्वप्न तक नहीं देखता, वही वह अमृत अभय और ब्रह्म आत्मा है। इन्द्र पुनः एक बार प्रसन्न होकर वापस निकल पड़े। यहां हम देखते हैं कि प्रजापति आत्मा की विभिन्न दशाओं का परिचय दे रहे हैं- जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति। इनमें से किसी में भी आत्मा को अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं होता।

मार्ग में ही, इन्द्र ने पुनः विचार किया, "यह सुषुप्त आत्मा उस अवस्था में अपने को ही नहीं जानता, न अन्य किसी वस्तु को जानता है। वस्तुतः उव अवस्था में उसका जैसे अस्तित्व ही नहीं रहता। तब उसको अजर, अमर, अभय, आदि विशेषण देने से क्या लाभ?" यह सोच वे पुनः प्रजापति के सामने उपस्थित हो गए। प्रजापति ने उनको पाँच वर्ष और ठहरने को बोला। इस प्रकार कहा गया है कि, निश्चय से, इन्द्र ने प्रजापति के पास 101 वर्ष बिताए, तभी उनको पूर्ण विद्या प्राप्त हुई। इससे संकेत दिया गया है कि निज आत्मा का ज्ञान सहजता से प्रापत नहीं होता, उसके लिए बहुत वर्षों तक प्रयास करना पड़ता है।

अब प्रजापति इन्द्र को आत्मा का तुरीय अर्थात् वास्तविक रूप बताते हैं- "हे मघवन्! यह शरीर मर्त्य है, इसको मृत्यु निगल जाती है। परन्तु यह उस अमृत, अशरीर आत्मा का अधिष्ठान है। जब तक वह आत्मा सशरीर रहता है, उसे प्रिय-अप्रिय अनुभव होते रहते हैं जब वह शरीर-रहित होता है, तब उसको प्रिय-अपिय्र छू तक नहीं सकते। (स्पष्टतः, यह उपदेश परमात्मा-विषयक नहीं है!" जब वह आत्मा परम ज्योति को प्राप्त करके, अपने वास्तविक रूप में पहुंच जाता है, वही 'उत्तम पुरुष' है। शरीर के बिना वह स्वछन्द रूप से सब प्रकार के आनन्द अनुभव करता है, परन्तु शरीर में वह प्राणों से इस प्रकार बद्ध है, जैसे कि अश्व रथ में जुते होते हैं। मुक्तावस्था में वह, अशरीरी होते हुए, जिस इन्द्रिय का, वाणी का, मन का प्रयोग करना चाहता है, वह अव्याहत रूप से कर लेता है। ब्रह्मलोक में ये देव, अर्थात् मुक्तात्माएँ, इसी आत्मा (जीवात्मा ही, न कि परमात्मा) की उपासना करते हैं, अर्थात् उसको जानते हैं, अनुभव करते हैं इस प्रकार जो इस आत्मा को जानते हैं, वे सारे लोक और सारी कामनाएँ भोगते हैं।" स्वामी दयानन्द ने इस अंश की व्याख्या में लिखा है - "वे मुक्त जीव स्थूल शरीर को छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में, परमेश्वर में विचरते हैं, क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं, वे साँसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते।। सत्यार्थ-प्रकाशः, नवम समुल्लासः।।"

वस्तुतः, जो समझते हैं कि हम परमात्मा को जान सकते हैं, वे भ्रमित हैं हम अपने स्वरूप को ही, बिना प्रकृति से रंगा हुए, शुद्ध रूप में देख सकते हैं परमात्मा, जो कि अनन्त है, उसकी हमें झलक-मात्र ही प्राप्त हो सकती है, उसका पूर्ण रूप हम कभी नहीं पा सकते-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः
अविज्ञात विजानता विज्ञातमविजानताम्
केनोपनिषद् 2/3

अर्थात् जो मानता है कि वह ब्रह्म को नहीं जानता, वही उसको जानता है। जो मानता है कि वह जानता है, वह उसे नही जानता जानने वाले उसे नही जानते, और न जानने वाले उसे जानते हैं। तात्पर्य है कि जो जानते हैं कि वह कभी भी नहीं जाना जा सकता, वस्तुतः वे ही उसको समझ पाए हैं।

अपने स्वरूप को देख लेने पर ही, परमात्मा भी कुछ-कुछ दिखने लगता है, और तब हम मोक्ष के भागी हो जाते हैं। यही इस आख्यायिका का उपदेश है। यही अन्य उपदेशो का भी सार है। इसका यह अर्थ नही है कि हम परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना बन्द कर दें। इन सभी से हम उसकी ओर आकृष्ट होते है,

उसकी कृपा के भागी बनते हैं और धीरे-धीरे यथार्थ का दर्शन कर पाते हैं।

यहाँ जीवात्मा को जो ब्रह्म कहा गया है, उससे भी हमें भ्रमित नहीं होना चाहिए। यह विशेषण भी जीवात्मा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। जीवात्मा भी महान है, विशेषकर प्रकृति की अपेक्षा प्रथम वाक्य मे जो आत्मा को 'अपहतपाप्मा, सत्यकाम, सत्यसंकल्प' कहा गया है, वे भी जीवात्मा के लिए ही है। वह इस प्रकार - पाप-पुण्य शरीर तक सीमित होते हैं। हम तो पाप से अछूते हैं -

असङ्.गोऽयं पुरुष इति। न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च।। न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते।।

साङ्.ख्यदर्शनम् 1/15, 16, 19।।

अर्थात् पुरुष (-जीवात्मा) प्रकृति से लिप्त नहीं होता। वह कर्म (पाप-पुण्य) से बद्ध नहीं होता, क्योंकि वे किसी और (-प्रकृति) के धर्म हैं। जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है।

हमारी सारी कमियाँ शरीर से सम्बद्ध हैं, नहीं तो हम भी सत्यकाम और सत्यसंकल्प हैं, जैसे मुक्तावस्था में रहते हैं, और जिसका उपदेश ऊपर किया गया है। इस प्रकार, इस पूरी आख्यायिका में जो वर्णन है, वह हमारा ही है, परमात्मा का नहीं।

❑❑

पृष्ठ 12 का शेष

गुण सुन। जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेकर मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी होता है उसको कोई शुभ गुण अप्राप्य नहीं रहता। ऐसा तू जान कि जिसके प्रताप से अनेकों ऋषि ब्रह्मलोक, अर्थात् मुक्तावस्था में सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों को प्रापत होते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मनुष्य निरन्तर सत्य में रमण करते, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा, उत्कृष्ट शुभ-गुण-स्वभावयुक्त और रोगरहित पराक्रमयुक्त शरीर, ब्रह्मचर्य, अर्थात् वेदादि सत्य-शास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यासादि कर्म करते हैं, वे सब बुरे काम और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति कराने हारे होते हैं और इन्हीं के सेवन से मुनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं। इसके बाद महर्षि दयानन्द ने अनेकानेक विषयों पर बहुत ही महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं जिसके लिए व्यवहारभानु पुस्तक का अध्ययन कर लाभ लेना चाहिए।

हम आशा करते हैं कि पाठक लेख में प्रस्तुत विचारों को पसन्द करेंगे और व्यवहारभानु पुस्तक को प्राप्त कर उसका स्वाध्याय कर अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

❑❑

पृष्ठ 8 का शेष

इधर-उधर उठाकर रखोगे तो उसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, अंगुली दिखा दी तो वह सड़ जाएगा। इससे अध्यात्म साधक को शिक्षा मिलती है कि जीवन फल के परिपक्व होने तक बड़ी सावधानी से चलना होगा। वह कोई ऐसा कार्य न कर बैठे कि जिससे लोगों की अंगुली उसकी ओर उठने लगे। अंगुली उठी और जीवन फल मुरझाया। साधक की ओर लोग हाथ उठाकर नमस्ते, अभिवादन तो करें पर अंगुली ना उठा सकें, ऐसा साफ सुथरा जीवन बनाना होगा।

इस प्रकार वेद मंत्र में खरबूजे के माध्यम से आध्यात्म विद्या की आवश्यकता, उपयोगिता और प्राप्ति का उपदेश हमें मिलता है। अतः अध्यात्म विद्या का महत्व हमें समझना चाहिए। इन सब बातों को लिखने का उद्देश्य अध्यात्म प्रवृत्ति को जागृत करना है।

❑❑

ईश्वर की सत्ता व स्वरूप

(प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब)

आर्यसमाज मानता है कि इस सृष्टि को बनाने वाली एक सत्ता है जिसका मुख्य नाम वेद आदि शास्त्रों में ओ३म् बताया गया है। सब ऋषि मुनियों व श्री गुरु नानकदेव जी ने उसीएक ओंकार के जप की महिमा गाई है। सूर्य, चांद, तारे आदि सब ग्रह उपग्रह बहुत गति से घूम रहे हैं। ये घूम ही नहीं रहे बहुत हैरान कर देने वाली गति से दौड़ रहे हैं। किसी नगर में सब नागरिक यदि जिधर को जिसका मुंह हो, दौड़ना आरम्भ कर दें तो फिर क्या होगा?

एक दूसरे से टकरायेंगे, गिरेंगे, घायल होंगे और अराजकता फैल जावेगी। कई दुर्घटनाएं होंगी परन्तु, विश्व इतिहास की किसी पुस्तक में या किसी दैनिक पत्र में यह पढ़ने को न मिलेगा कि कहीं सूर्य, चांद, व तारों की कोई दुर्घटना घटी है। संसार में प्रत्येक नगर में यातायात को सम्भालने वाले, देखने वाले सैकड़ों नहीं सहस्रों व लाखों इंस्पैक्टर है, फिर भी दुर्घटनाएं होती रहती हैं परन्तु असंख्य उपग्रह दिन-रात दौड़ रहे हैं फिर भी कभी नहीं टकराते। क्यों? इसलिए कि इस सृष्टि का संचालन एक सर्वज्ञ शक्ति कर रही है जिसका निज नाम ओ३म् है।

बाईबल का 'आमीन' शब्द व कुरान का अ़लम. भी ओ३म् का ही विकृत रूप है। वेद बताते हैं कि प्रभु दायें, बायें, यहां, वहां, ऊपर और नीचे सर्वत्र है। सर्वव्यापक होने के कारण ही वह सारे लोकलोकान्तरों को अपने वश में किये हुए हैं। समुद्र में, आकाश में और धरती पर पशु, पक्षी, प्राणी व पेड़ पौधे प्रतिक्षण जन्म ले रहे हैं। पेड़ कौन उगा रहा है? पक्षी के पेट में अण्डा किसने बना दिया? मानना पड़ेगा कि ईश्वर सर्वव्यापक है। वह पक्षी के गर्भ में, माँ की कोख में व भूमि के गर्भ में भी काम कर रहा है। तभी वेद उसे सर्वज्ञ कहता है। सर्वव्यापक होने से वह सब कुछ जानता है। वह प्रभु सर्वव्यापक है इसीलिए सर्वशक्तिमान् भी है।

आर्यसमाज मानता है कि परमेश्वर को सृष्टि के चलाने के लिए किसी की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। यह विश्व उस प्रभु के वश में है, वह परमात्मा किसी के वश में नहीं है। ऋषि मुनि उसी की आज्ञा को मानते थे। गुरुओं ने पंजाबी में कहा था-

"तेरा भाना मीठा लागे"

महर्षि दयानन्द ने देह का त्याग करते हुए कहा था- **"प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।"**

ये वचन यही सिद्ध करते हैं कि ऋषि मुनि, गुरु, ज्ञानी, भक्त भी सब उसके बस में है। भगवान् भक्तों के बस में नहीं होता।

वेद व सब ऋषि मुनि बताते हैं कि परमात्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है। गुरु नानक देवआदि महापुरुषों ने भी यही वैदिक सिद्धान्त माना है।

"दूजो काहे सिमरिये जो जन्मे ते मर जाय"

परमात्मा शरीरधारी नहीं है। वेद उपनिषद् उस प्रभु को 'अकाय' बताते हैं। अकाय का सीधा अर्थ है जिसकी काया न हो। परमात्मा को काया, शरीर से क्या करना और न कुछ उठाना या पहुंचाना। वह तो कण कण में है। **सबके भीतर है सबके बाहर है कहां जायेगा? किसे लायेगा? सब कुछ उसके पास है।** तुलसीदास जी भी वेद की यही आज्ञा मानते हुए कहते हैं-

बिन पग चले सुने बिन काना।
बिन कर करे कर्म विधि नाना।।

आर्यसमाज कहता है परमात्मा ने हमारे शरीरों को बनाया है, हम परमात्मा का शरीर बनाने वाले कौन? वह हमारा पिता माता व बन्धु है। हम मनुष्यों में से कोई परमात्मा का माता व पिता नहीं हो सकता। परमात्मा अवतार नहीं लेता। अवतार शब्द चार वेदों में भी नहीं मिलेगा। अवतार शब्द छः दर्शनों में भी नहीं। अवतार शब्द ग्यारह उपनिषदों में भी नहीं। गीता में नहीं, मनुस्मृति में नहीं और वाल्मीकि रामायण व व्यास जी के महाभारत में भी नहीं। इससे सिद्ध होता है कि ऋषि दयानन्द ने कोई नई बात नहीं कही। उन्होंने अनादिकाल से चले आ रहे वेद के सिद्धान्त हमारे सामने रखे हैं।

आर्य समाज पुनर्जन्म को मानता है

आर्यसमाज आवागमन के सिद्धान्त को मानता है। अब तो मुसलमानों और ईसाईयों में भी अनेक विद्वान् आवागमन को मानने लगे हैं। यह ऋषि दयानन्द जी की बहुत बड़ी विजय है। एक मुसलमान विद्वान् ने अपनी पुस्तक 'दो कुरान' में पुनर्जन्म के पक्ष में कई युक्तियां दी है। ये सारे तर्क हुतात्मा पं. लेखराम जी के महाबलिदान का मीठा फल हैं। एक समय था कि पं. लेखराम जी ने पुनर्जन्म पर एक खोजपूर्ण ग्रन्थ रचकर मौलवियों व पादरियों में एक हलचल सी मचा दी थी। अब मौलवी स्वयं लिखता है कि रात आई तो क्या हुआ प्रभात अवश्य आएगी। सूर्य अस्त हो गया तो फिर क्या? रात के बीत जाने पर सूर्योदय होगा ही। जल से बर्फ़ बन गई और बर्फ से फिर जल बनेगा। केवल रूप बदला है। ऐसे ही जीव चोला बदलते रहते हैं। जीव का नाश नहीं होता। मृत्यु भी जीवन का एक आवश्यक अंग है। वैदिक धर्म न तो सदा का स्वर्ग मानता है और न सदा का नर्क। स्वर्ग नरक नाम के कोई दो क्षेत्र नहीं है। अब तो ईसाई, मुसलमान भी इन बातों को नहीं मानते। जहां प्रेम है, धर्म है, सत्य है, सदाचार है वहीं स्वर्ग है और जहां कलह है, कपट है, कूट है, छल है, वहीं नरक है।

पुनर्जन्म के बारे में मुसलमानों की भ्रान्तियां सर्वथा निराधार हैं। हठ और दुराग्रह भी इन भ्रान्तियों का आधार है। कुरान में एक भी आयत ऐसी नहीं मिलेगी जिसमें पुनर्जन्म का स्पष्ट निषेध हो। पुनर्जन्म के पक्ष में तो कई आयतें मिलती हैं। देहली के एक मौलाना महबूब अली ने तो 1937 के आसपास पुनर्जन्म के पक्ष में बहुत कुछ लिखा था। आपने अपने मौलाना भाईयों से एक बहुत सार्थक व सीधा प्रश्न किया था कि **यदि पुनर्जन्म को स्वीकार न किया जाये तो कुरान वर्णित अल्लाह के नामों का क्या बनेगा? अल्लाह के सब नाम निरर्थक हो जायेंगे।** यह कैसे?

ईश्वर राज़क (अन्न धनदाता), आदिल (न्यायकारी), रहीम, करीम (दयालु) मालिक, पालक व खालिक (सृजन करने वाला) अलीमे कुल (सबको जानने वाला) है। प्रश्न यह उठता है कि यदि जीवों को अनादि न माना जाये तो वह जीवों की उत्पत्ति से पूर्व किस का पालक मालिक था? किसे न्याय देता था? उसके ये सब गुण बेकार ही थे क्या? जब से अल्लाह है, उस में ये सब गुण तभी से हैं। वह सदा से दाता और विधाता है। अतः अनादि प्रभु की प्रजा भी अनादि माननी पड़ेगी। जो अनादि है उसका नाश भी नहीं होगा। इसलिए जीव का पूर्वजनम व पुनर्जन्म भी मानना ही पड़ेगा। एक मुसलमान कवि ने बहुत सुन्दर लिखा है-

किसी के मरने से यह न समझो कि जान वापस नहीं मिलेगी। ब-ईदे शाने करीम है यह किसी से लेकर के कुछ न देना।।

अर्थात् यह मत समझो कि कोई मर गया तो फिर लौट कर नहीं आयेगा। यह बात दयालु प्रभु के स्वभाव के विपरीत है कि वह किसी से लेकर के कुछ न दे। ली गई जान (जीव) अवश्य फिर जन्म पायेगी।

ईसाई व मुसलमान भाई बहिश्त व दोज़ख़ के सुख

व दुःख को इस जन्म के अच्छे बुरे अमाल (कर्मों) का फल मानते हैं। इन्हें यह भी सोचना चाहिए कि इस जन्म के सुख व दुःख के कारण क्या हैं? इन का आधार भी पूर्व में किये गये कर्मों को मानना पड़ेगा। हज़रत मुहम्मद जी को मुसलमान अत्यन्त पवित्र आत्मा मानते हैं। उनको भी जीवन में कई बार दुःख भोगने पड़े। इकलौता पुत्र भी चल बसा। पुण्यात्माओं के दुःखों के कारण की व्याख्या पूर्वजन्म के कर्मों को मानने से ही हो सकती है।

डॉ. इकबाल ने लिखा है-

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।

खुदा बन्दे से ख़ुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?

डॉ. इकबाल इन पंक्तियों में कर्म-फल सिद्धान्त व पुनर्जन्म को घोष करते हैं। जब जब तकदीर (प्रारब्ध) बने तब तब प्रत्येक प्रारब्ध के निश्चय के समय परमात्मा प्रत्येक जीव से यह पूछे बता तेरा भाग्य कैसा हो? भाग्य का निर्णय करने से पहले जीव की सत्ता यहां स्वीकार की गई है। यह नहीं है कि भाग्य व जीव एक साथ ही बनाये गये। बार-बार जन्म लेने पर बार-बार भाग्य बनता है। ऐसा डॉ. इकबाल का कथन है। **'हर तकदीर से पहले'** बहुत मार्मिक और प्रखर सत्य है। इसका अर्थ ही यही है कि जब जब भी जीव को नया शरीर धारण करने का अवसर मिले विधाता हर बार उसके भाग्य का निर्णय करने से पहले उससे पूछ तो ले। इसलिए बिना किसी भय अथवा संकोच के पुनर्जन्म के सिद्धान्त में सबका विश्वास होना चाहिए।

झूठ नहीं टिकेगा, नहीं टिकेगा

ईश्वर में विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिये कि झूठ कभी नहीं टिकेगा। वैज्ञानिक सोच वाले सब मनुष्यों को जान लेना चाहिये कि हठ, दुराग्रह व स्वार्थ की सिद्धि के लिए कुछ लोग अपने पशु-बल से, राजनैतिक शक्ति से कुछ देर के लिए तो झूठ को थोप सकते हैं परन्तु सदा-सदा के लिए झूठ को लोग मानते रहेंगे, ऐसा तो सम्भव नहीं है।

आज कितने मुसलमान भाई यह मानते हैं कि शैतान हम से पाप करवाता है? हम पाप कर्म करने के दोषी नहीं हैं। इस पुरानी इस्लामी मान्यता की स्वयं मुसलमान ही खिल्ली उड़ा रहे हैं। एक मुस्लिम कवि का कथन है-

खूब हंसी आती है मुझे हज़रते इन्सान पर।
फ़ेले बद तो ख़ुद करे लानत करे शैतान पर।।

अर्थात् पाप स्वयं करके शैतान को धिक्कारता है। यह क्या विचित्र सोच है। इस्लामी भाईयों का यह दृष्टिकोण स्वागत योग्य है। यह इस्लाम का वैदिक रंग है। इस स्वस्थ चिन्तन से सबका भला होगा। एकता होगी। दूई द्वेष मिटेगा।

उर्दू कवि 'ज़ौक' ने कभी लिखा था-

कब हक परस्त ज़ाहद जन्नत परस्त है।
हूरों पै मर रहा है यह शहव्वत परस्त है।।

अर्थात् नमाज़ी, भला, सत्यनिष्ठ मुसलमान बहिशत प्रेमी नहीं है। यह तो सुन्दरियों (हूरों) पर मरने वाला कामांध पुरुष है। ईश्वर का धन्यवाद कि 'ऋषियों का संदेश और सच्च की पुकार सब सुनने लगे हैं जो मुसलमान भाई कभी झूम झूक कर यह गाया करते थे-

अमल पर नहीं ज़ाम बिल्कुल मुझे।
नबी का है हां इस तवस्सल मुझे।।
ख़तायें मिरी बख़्श दीजो तमाम।
तुफ़ैले पैग़म्बर अलै उस्सलाम।।

अर्थात् मुझे स्व शुभ कर्मों का कोई अभिमान नहीं। नबी की कृपा पर जी रहा हूं। मेरे पाप क्षमा करना। मेरे अल्लाह! मेरे रसूल के कारण मेरे खोटे कर्मों के लिए मुझे दण्डित न करना। और सच्च की पुकार सुनकर इस्लाम के जाने माने मौलाना डॉ. गुलाम जैलानी अपनी पुस्तक 'दो इस्लाम' में मुसलमानों की गिरावट के कई कारण देते हुए ये निम्न पांच कारण भी लिखते हैं-

(1) मुसलमान शरीर पर कितना भी मल पोत ले वह अपवित्र नहीं होता।

(2) केवल कलमा पढ़ने से बहिशत मिल जाती है।

(3) मुसलमान क्षमा किये जायेंगे। अल्लाह इन्हें कभी दुःख दण्ड या पीड़ा न देगा।

(4) मुर्दों (कबरों, दरगाहों) से कामनायें पूरी करवाना। कबर पूजा में विश्वास।

(5) मुरशद (गुरु) पकड़े बिना मोक्ष नहीं मिलेगा।

महर्षि दयानन्द जी ने इस युग में इन्हीं बुराईयों से लोगों को सावधान करते हुए गुरुओं के गुरु, आदि गुरु परमेश्वर की शरण में आने के लिए कहा। जड़ पूजा का विरोध किया। सत्कर्मों के करने की प्रेरणा दी। गुरुडम का विरोध किया। आज का इस्लाम इस वैदिक रंग को स्वीकार कर रहा है। यह सबके लिए हर्ष का विषय है।

ईसाईयों में भी इसी प्रकार की हलचल हो रही है। उनमें अब चमत्कार कौन मानता है? आज रोगी होने पर ईसाई हस्पतालों में जाते हैं, कोई पोप विशप किसी ईसाई रोगी को छूकर तो ठीक नहीं करता। भारत में सत्य-साईं बाबा के चमत्कारों की बड़ी धूम थी परन्तु कुछ समय पूर्व आक्रमण हुआ तो बाबा जी जान बचा कर भाग निकले। इस कमरे से उस कमरे में क्या हुआ? कैसे हुआ? यह पुलिस जांच करती रही। भगवान् से क्या छुपा है? फिर पुलिस क्यों जांच करती रही। भगवान् ही अपनी जांच Report रिपोर्ट पुलिस को दे देते तो काम बन जाता। इस घटना ने एक भगवान् के सब चमत्कारों का रहस्य खोल दिया। सच्च की पुकार सुनी गई।

सच्च की पुकार सब ओर गूंज रही है। 'राजस्थान पत्रिका' एक लोकप्रिय दैनिक है। इसमें भी अंध विश्वास व पोंगापंथ को बढ़ावा देने वाले लेख छपते ही रहते हैं। इसके 25 अगस्त सन् 1993 के अंक में सम्पादकीय वाले पृष्ठ पर श्रीमान् ओम् ने **'सद्भाव? ना'** शीर्षक से अपने स्तम्भ में लिखा था-

"हम वर्ष में एक दिन शिक्षक दिवस मनाकर शिक्षक का सम्मान करते हैं बाकी बचे दिनों में साल भर तक शिक्षक का अपमान करते रहते हैं। यही हमारी संस्कृति है। जम कर पाप करो, **एक दिन गंगा पर जाकर स्नान कर लो, पाप वहां विसर्जित कर आओ तथा गंगा स्नान के पुण्य के बदले 'स्वर्ग' में 'बंगला' आरक्षित करवा लो।"**

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि तीर्थ यात्रा, गंगा स्नान व व्रत उपवास द्वारा पाप के फल से बचने या पाप क्षमा होने की बातों को अब विचारशील पाखण्ड ही मानते हैं। कई एक तो दूर-दूर पर्वतों नदियों आदि पर तीर्थ यात्रा को देशाटन, सांस्कृतिक एकता व स्वास्थ्य लाभ के लिए उल्लास यात्रा ही मानते हैं।

पृष्ठ 5 का शेष

को और राधास्वामियों को शास्त्रार्थ समर में परास्त किया। वैदिक संस्कृति विश्व भर में दुन्दुभि यदि बजाई जा सकती है, तो उसका एकमात्र साधन है स्वाध्याय। आज आर्यसमाज के उदेशकों, भजनोपदेशकों, पुरोहितों, प्रचारकों और अधिकारियों को और अधिक स्वाध्याय की आवश्यकता है। स्वाध्याय के बिना हम ऋषि दयानन्द के विद्यायुक्त, धर्मयुक्त, अस्तिकता युक्त, भक्ति युक्त समाज-निर्माण के सपने को साकार नहीं कर पायेंगें। अतः हम युवा पीढ़ी को भी स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित करें ताकि युवा पीढ़ी स्वाध्याय के द्वारा अपने जीवन का सर्वांङ्गीण विकास कर सके। हर युवा स्वाध्यायशील बने; हर गृहस्थ स्वाध्यायशील बने; हर पुरुष स्वाध्यायशील बने, हर देवी स्वाध्यायशील बने और हर पुत्र-पुत्री तथा भ्राता-भगिनी स्वाध्यायशील बने ताकि समृद्ध समाज का, उन्नत समाज का, पाखण्ड मुक्त और सशक्त समाज और अखण्ड राष्ट्र का निर्माण किया जा सके।

❑❑

हे युवा! पहचान अपनी क्षमता

(राजवीर आर्य, मुरादाबाद)

स्वाध्याय के समय एक वाक्य ने मुझे अदर तक व्यथित कर दिया। वेदों के उद्भट विद्वान्, अनन्य देशभक्त जो सत्याग्रह व विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के अपराध में जेल भी जा चुके स्वामी श्रद्धानंद जैसे लौह पुरुष के शिष्य आचार्य अभय देव ने देश प्रेम के शीर्ष से लिखे वैदिक उपदेश में कहा है 'आज देश प्रेम व देश भक्ति का जितना अभाव हम भारतीयों में हैं संभवतः उतना अन्य देशों में नहीं।' विडम्बना यह है कि यह वाक्य जितना कटु है उतना ही सत्य भी है। इसकी प्रमाणिकता में कुछ कहने को नहीं बल्कि आंख खोलकर चतुर्दिक देखने मात्र की आवश्यकता है।

मेरे आत्म बंधुओं, क्या यह वाक्य आपको आपसे कुछ कहता हुआ सा लगता है? क्या आपको नहीं लगता कि उक्त मनीषी ने आपको चौराहे पर निःसंकोच नंगा कर दिया है? क्या इसे पढ़कर आपके रक्त में कोई उबाल आ रहा है? यदि नहीं तो आप सच्चे अर्थों में भारतीय नहीं है। कोई आपकी राष्ट्र भक्ति को ललकारे और आपके रक्त में गति नहीं, यह भारतीयता का लक्षण कदापि नहीं हो सकता। मानवता व स्वाभिमान रहित द्विपद की क्या परिभाषा हो सकती है, चिन्तन का विषय है और यदि उबाल आ रहा है, तो उसे रोकें नहीं बल्कि उसे सही दिशा देकर उन तथ्यों पर चिंतन करें जिनके आधार पर यह ऐसा कटु सत्य कहा गया है। आपके रक्त में उबाल का अर्थ है आपके अन्दर का मातृ प्रेम ललकार रहा है जो हमें हमारे पूर्वजों के कल्याणकारी बलिदान पथ से जोड़ता है।

देशभक्ति ईश्वर भक्ति का एक आवश्यक अंश है। जो देश भक्त नहीं, वह ईश्वर भक्त कदापि नहीं हो सकता। ईश्वर की सर्वकल्याणी वेदवाणी में कहा गया है 'माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः' (अथर्व 12. 1.12)। अर्थात् भूमि मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। ऋषियों ने कहा है 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गिरीयसी।' जननी व जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है। इसे किसी कवि ने बड़े सुन्दर व मार्मिक भावों में कहा है 'स्वर्ग सुख भी भूलते हम प्यार पा जिस मातृभूका, मान रखने के लिए उसका बने हम स्वाभिमानी।' सिद्ध है कि हमारा हमारी माता से जो सदैव सम्मानजनक सेव्य संबंध है वही संबंध हमारी जन्मभूमि-मातृभूमि के साथ है। अतः मातृभूमि के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं, इन्हें प्रयासपूर्वक जानकर उनके प्रति सदैव सजग रहना चाहिए। इनके प्रति उदासीनता सदैव घातक होती है।

कम से कम हमारे लिए तो यह कोई नया विषय नहीं होना चाहिए। परतंत्र काल की दुर्दशा से कुछ भी नहीं सीखने का अर्थ होगा उसी दुरवस्था को पुनः सादर निमंत्रण देना। इसलिए हे युवा बंधुओं। जागो, जब मानवता ही मर गई तो क्या होगा आपके युवापन का? किस काम आएगा कल का युवक? हमारी सभ्यता व संस्कृति पर जो किसी भी देश की प्राणशक्ति है, आज जितनी निर्दयता व निर्भयता पूर्वक अस्तित्व की समाप्ति हेतु घातक प्रहार हो रहे हैं संभवतः उतने घातक और विनाशक प्रहार परतंत्रताकाल में भी नहीं हुए। कारण कि तब प्रहारक विदेशी थे व हम तन, मन, धन से रक्षा पंक्ति से डटे हुए थे और आज विदेशी पतन गामी भौतिकता के उन्मादी अनुकरण में हम स्वयं अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं मानवीय आदर्शों को पूर्णतः मिटाने में लगे हुए हैं व रक्षा पंक्ति प्रायः सूनी सी है क्योंकि जो उधर हैं वे भी अनमनस्क से भाव से औपचारिकता पूरी कर रहे हैं पहले जैसे समर्पित रक्षक अब अप्राप्त नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

ऐसी गंभीर निर्णायक स्थिति में मैं नहीं समझता

कि थोड़ी सी भी प्रतीक्षा के बाद हमारी निष्ठा व देशभक्ति की कोई उपादेयता शेष होगी। फिर हम प्रतीक्षा किस बात की कर रहे हैं? पुत्र के जीते जी मां को कोई गालियां दे, यहां तक कि उसके पावन आंचल की ओर किसी कुटिल षड्यंत्रकारी का क्रूर हाथ, कुत्सित भावना से (प्रकट में सेवा के नाम पर) बढ़ रहा हो तो पुत्र को प्रतीक्षा कैसी? क्या करेगा वो आंचल लुट जाने के बाद? क्या आज हममें किसी के मनोगत कुटिल भावों को समझने की क्षमता भी शेष नहीं है? क्या किसी के प्राणांत के बाद भी कोई उपचार शेष रहता है? नहीं रहता ना, तो हम उस स्थिति की प्रतीक्षा ही क्यों करें जब हमारे पास सिवाय प्रायश्चित के कुछ भी न रहे? हे रे सिंह शावको! प्रायश्चित कभी पर्याप्त नहीं होता है इसलिए उस अवस्था से पूर्व ही कुछ ऐसा प्रयत्न करो कि वह अवस्था ही न आए। मनोरंजन के नाम पर अश्लील व उत्तेजक सामग्री, ज्ञानवर्धन के नाम पर हमारी देव संस्कृति के संदर्भ में भ्रामक व तथ्य प्रतिकूल संकलन आपको परोसा जा रहा है और आप चटखारे लेकर कृतज्ञभाव से पचा रहे हैं। यही नहीं आपकी बलाओं का मुख मोड़ने वाली, इतिहास बदलने व रचने वाली युवावस्था को धीमा विष (चुटकी, गुटखा) देकर निस्तेज बनाने का षड्यंत्र भी आपकी असावधानी से सफल हो रहा है। दुर्दशन (दूरदर्शन) का झुनझुना आपके हाथों में देकर आपकी मातृभूमि के साथ अपमान जनक, घिनौनी क्रिया कर रहे हैं। हे युवको! कल को इनसे निस्तेज हुए आप अपनी मां की लाज बचाने में अक्षम होकर जागे भी तो क्या जागे? मेरे युवा बंधुओं। इन विषैले पदार्थों के सेवन से आपकी संतति भी दुर्बल निस्तेज और रोगी होगी! उनके जीवन से खिलवाड़ करने का आपको अधिकार नहीं है।

अधिकार तो आपको अपने पौरुष को नष्ट करने का भी नहीं क्योंकि युवा राष्ट्र की सम्पत्ति होता है। विडम्बना तो यह है कि हमारा राष्ट्र ही अपने अमोघास्त्र युवावर्ग को दिग्भ्रमित व निस्तेज करने में रुचिपूर्वक लगा हुआ है। प्रभु जाने इस अभागे राष्ट्र का कौन सा हित हो रहा है?

हे युग सृष्टा युवक! इस महाविनाश से बचकर अपनी शक्ति के सदुपयोग की दिशा में कुछ करो। देखो इतिहास आपको बुला रहा है। देश आपके नष्ट होते यौवन पर विवश होकर आंसू बहा रहा है। तुम देश के वर्तमान व भविष्य हो। इतिहास को तुम ही गति दे सकते हो, यह सामर्थ्य तुम्हारे (युवक) अतिरिक्त किसी में नहीं है। युवा व युवती शब्द का अर्थ ही यह है- जिसमें जोड़ने व तोड़ने की शक्ति हो।

हे युवको। युवात्व को सार्थक करो। इसे दुर्व्यसनों व विलासिता की भेंट चढ़ाने की अपेक्षा देश धर्म व समाज को समर्पित करो। इन्हें इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। कवि के शब्दों में-

रक्त शिराओं में राणा का रह-रह आज हिलोरे लेता।

मातृ भूमि का कण-कण तृण-तृण हमको आज निमंत्रण देता।।

आज पुनः आक्रांत हुई है, मातृभूमि हम सबकी प्यारी।

उठो चुनौती को स्वीकारो युवको आज हमारी बारी।

युवको आज हमारी बारी...।

मित्रों, यदि आप विद्यावान है तो देश के अज्ञान को दूर करने का प्रण करो। शक्ति सम्पन्न हो तो देश से अन्याय, अत्याचार व शोषण का मिटाने की सौगंध लो और श्री सम्पन्न धनवान हो तो अन्न वस्त्रादि के अभाव को समाप्त करने का शुभ संकल्प धारण करो। देखो आपके होते हुए देश में कोई अविद्या ग्रस्त मूर्ख है, कोई अनीति अत्याचार व शोषण में पिस रहा है या कोई भूखा नंगा आपकी आंखों के सामने बिलख रहा है तो आपके युवापन आपकी विद्या बल व श्री सम्पन्नता को आज नहीं तो कल धिक्कार अवश्य सुननी पड़ेगी।

शेष पृष्ठ 27 पर।

आर्यावर्त का ऋषि-स्वप्न : आर्य समाज

(सत्येन्द्र सिंह आर्य, मेरठ)

यह सर्व विदित है कि इस देश का सबसे पहला नाम 'आर्यावर्त' है, आज भी जब कोई धार्मिक अनुष्ठान या विवाह, नामकण आदि कोई संस्कार होता है तो पुरोहित वरण के समय जो संकल्प मंत्र बोला जाता है, उसमें इस देश का नाम 'आर्यावर्त' ही बोला जाता है। अथः जम्बू द्वीपे भरत खण्डे आर्यावर्तान्तर्गत...प्रान्ते... । हमारी सत्य सनातन वैदिक संस्कृति को विश्वास आर्य संस्कृति के नाम से ही पुकारते हैं। अपने महभारत व रामायण आदि प्राचीन इतिहास ग्रन्थों को उठाकर देखें तो हमारी देवियां अपने-अपने पतियों को 'आर्य पुत्र' कहकर पुकारती थी। हमारे धर्म ग्रन्थ वेदों की बात करें तो वेदों में परमात्मा की ओर से स्पष्ट आदेश है कि मैं यह भूमि आर्यों को देता हूँ 'अहं भूमिमदाम् आर्याय।' अब थोड़ा यह विचार भी कर लें कि आर्य किसे कहते हैं? वेद का ही आदेश है- "आर्य ईश्वर पुत्रः" अर्थात् ईश्वर के पुत्रों को आर्य कहते हैं। यह बात तनिक कठिन हो जाती है, लगता है जैसे ईसाई लोग ईसा मसीह को परमात्मा का इकलौता बेटा कहते हैं, क्या आर्य लोग भी वैसे ही ईश्वर पुत्र हैं? नहीं कदापि नहीं। वेद की बात वेद के माध्यम से या वेद के आधार पर ही समझी जा सकती हे। वेद कहता है 'अनुव्रतः पितुः पुत्रे मात्रा भवतु संमना' अर्थात् पुत्र वह है जो पिता का अनुव्रती हो, पिता के व्रतों की अनुपालना करने वाला हो। इस दृष्टि से देखें तो परमात्मा की वेदाज्ञा का निष्ठा पूर्वक पालन करने वाले प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुष को आर्य कहते हैं। आर्य शब्द कोई जातिवाचक नहीं है यह गुण वाचक है।

'आर्य' शब्द का शाब्दिक अर्थ लेकर चर्चा करें तो संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से आर्य शब्द 'ऋगतौ' धातु से बनता है। गति के तीन अर्थ होते हैं। 'गतेस्त्रयो' अर्थाज्ञानंगमनं प्राप्तश्चेति' अर्थात् गति के तीन अर्थ होते हैं, ज्ञान, गमन और प्राप्ति। यहां गति का मूल अर्थ गमन ही है, लेकिन वह गमन प्रथम ज्ञान पूर्वक हो और अन्ततः प्राप्ति तक निरन्तर चलता रहे। बिना ज्ञान का गमन या तो भ्रमण हो सकता है या भटकाव और वह किसी लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो पाता। आर्य वही है जो कुछ करने से पहले उस पर पूर्ण रीति से विचार कर ले! सर्वप्रथम कर्तव्य अकर्तव्य, हित-अहित, उत्थान-पतन और धर्म-अधर्म का विचार करके ही कोई कार्य प्रारम्भ करे। इस प्रकार पूर्ण विचार कर लेने के बाद, उचित अनुचित की कसौटी पर परखने के बाद जो भी कार्य करे उसे लक्ष्य तक पहुँचा कर ही छोड़े। किसी कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है- 'जागकर भी तन्द्रामिटे आसुरी, ब्रह्मकालीन का जागरण व्यर्थ है। तीव्र गति से उठे लक्ष्य पा ना सके, तीव्र गति से उठा वह चरण व्यर्थ है।' लक्ष्य प्राप्ति से पहले गति का रुक जाना सारे परिश्रम को निष्फल बना देता है। ऐसा निष्फल श्रम करने वाला आर्य नहीं कहलाता। आर्य वह है जोविचार पूर्व किसी काम को प्रारम्भ करेतो प्राप्ति पर्यन्त करता ही रहे। विध्न बाधाएँ, आकर्षण व अटकलें हमारा रास्ता न रोक सकें, हमारे कदम लक्ष्य पाकर ही रुकें तो हम सच्चे अर्थों में आर्य कहलाने के अधिकारी हैं। ऐसे ज्ञान-सम्पन्न, कर्मठ सफल-काम सज्जनों के संगठन को आर्यसमाज कहते हैं।

आर्य समाज की स्थापना सन् 1875 में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने मुम्बई में की थी।

आर्य समाज के नियम निर्धारित करते समय महर्षि ने छठे नियम में इसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना लिखा है। 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।' संसार की किसी संस्था के नियम व उद्देश्यों में संसार के पूर्ण उपकार-शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति को उसका मुख्य उद्दश्य नहीं बनाया गया होगा! चूंकि आर्य समाज एक ऋषि संस्था है, इसकी सैद्धान्तिक नींव परमेश्वर के वेद ज्ञान पर टिकी है। वेद चूंकि परमपिता परमेश्वर का ज्ञान है इसलिए वेद में कहीं किसी प्रकार के भेद भाव व पक्षपात की बात हो ही नहीं सकती। वेद मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता तो आर्य समाज ऐसा कैसे कर सकता है? वेद 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करता है- सबको आर्य बनाने की बात कहता है। आर्य समाज इस वेद के आदेश का पालन करते हुए मनुष्य को ज्ञान सम्पन्न, कर्मठ और प्राप्ति पर्यन्त कर्म करते रहने वाला बनाना चाहता है! सर्वप्रथम राष्ट्रीय स्तर पर यह अभियान चलाकर प्रत्येक देशवासी को आर्य बनाना हम सबका पावन कर्त्तव्य है! जब तक इस देश में आर्य संस्कृति थी तब तक यहां श्रीराम-लक्ष्मण जैसे भाई होते थे, श्रीकृष्ण जैसे योगिराज होते थे, अर्जुन जैसे धनुर्धर और भीम जैसे महाबली इस आर्य आर्य संस्कृति की ही उपज थे। याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल, कणाद और वाल्मीकि जैसे तत्ववेत्ता ऋषि महर्षि, जनक व अश्वपति जैसे प्रजा वत्सल राजा आर्य संस्कृति की ही देन थे। जब हम आर्य थे, जब यह देश आर्यावर्त था, तब हम इस भूमण्डल के चक्रवर्ती शासक थे, तब हम विश्व गुरू और सोने की चिड़िया कहे जाते थे। महर्षि दयानन्द ने वही स्वप्न लेकर आर्य समाज की स्थापना की थी। हम सब मिलकर राष्ट्रीय गौरव के इस स्वर्णकाल को इस ऋषि भूमि पर पुनः साकार करें। आर्य समाज सब बुद्धिजीवियों को सादर आह्वान करता है कि आओ उस ऋषि स्वप्न को साकार करने के लिए प्रथम अपने राष्ट्र को आर्यावर्त और विश्व को आर्य बनाने के लिए मिलकर काम करेंगे। ❑❑

पृष्ठ 24 का शेष

अपने बारे में हमारी अपनी परिभाषा व धारणा कोई मायने नहीं रखती। समाज में हर वस्तु व व्यक्ति का मूल्य उसकी उपयोगिता व गुणों के आधार पर आंका जाता है। आज प्रत्येक युवक को सोचना है कि देश धर्म व समाज के लिए वह कितना उपयोगी है?

इस संक्रमण शील समय में तो हर एक युवक को ही नहीं बल्कि हर जागरुक नागरिक को अपना स्थान व उपयोगिता अवश्य तय करनी चाहिए कि प्रत्यक्ष परोक्ष में वह मर्यादाओं के पोषण के नाम पर कहां खड़ा है? जहां है क्या वह मानवीय पक्ष है? क्या आपकी आत्मा उससे संतुष्ट है? ये निर्णय अवश्य करना है वर्ना समय व इतिहास आपको कभी क्षमा नहीं करेगा। हे युवक! ये अवश्य ध्यान रखना कि कहीं तुम्हारे आलस्य व प्रमाद से समग्र युवा वर्ग को लांछित न होना पड़े। अन्त में-

बलबुद्धि पराक्रम से जिसके हुआ कुछ जन कल्याण नहीं।

पथ भटकी मानवता जिससे पा सकी तनिक सा त्राण नहीं।

जर्जरित वेदना युत वाणी सुन नयन सजल भी हो न सके।

समझो पाषाण हृदय तुम हो, उर हीन है वो पाषाण नहीं।

❑❑

वैराग्य का महत्त्व

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः।
समानाः स्वर्याता सपदि सुहृदो जीवितसमाः।
शनैर्यष्टयोत्थानं घनतिमिरे रुद्धे च नयने
अहो दुष्टः कायस्तदपि मरणोपाय चकितः।।१।।

अर्थ- एक वृद्ध पुरुष कहता है - मेरी भोग करने की इच्छाएँ निवृत हो गई हैं। मेरा पुरुषत्व का अभिमान भी समाप्त हो गया है। मेरी समान आयु के साथी स्वर्ग चले गये हैं। मैं स्वयं भी लाठी के सहारे चलता हूँ। आँखें क्षीण हो गई हैं। तब भी मुझे मृत्यु का भय सताता रहता है, यह महान् आश्चर्य की बात है।।१।।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।२।।

अर्थ- संसार के विषयों को हमने नहीं भोगा, वरन् विषय हमें भोग रहे हैं। हमने तपस्या नहीं की, वरन् तपस्या ही हमें तपा रही है। हमने काल व्यतीत नहीं किया, वरन् हम ही व्यतीत हो रहे हैं। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, वरन् हम ही जीर्ण हो गये।।२।।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं रूपे जराया भयम्,
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं धने राजभयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं कार्यं कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां शम्भोः पदं निर्भयम्।।३।।

अर्थ- भोग करने पर रोगों का भय, कुलीन के पतन का भय, रूपवान को बुढ़ापे का भय, मानी को दैन्य भय, बली को सेना का भय, धनवान को राज का भय, शास्त्रों के विद्वान् को वाद का भय, गुणी को दुष्टों का भय, भौतिक शरीर को यमराज का भय, इस प्रकार सभी में भय रहता है, परन्तु एक परमेश्वर की भक्ति ही निर्भय है।।३।।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।।४।।

अर्थ- एक निर्धन व्यक्ति राजा से कहता है - हे राजन्! हम वृक्षों की छाल वस्त्र पहन कर और आप बहुमूल्य रेशमी शाल पहन कर सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकार हमारा और आपका सन्तोष बराबर है। उसमें कोई अन्तर नहीं है। संसार में जिसकी इच्छाएँ जितनी अधिक होती हैं, वह उतना ही गरीब होता है और मन के सन्तुष्ट होने पर कौन धनवान है, कौन निर्धन।।४।। ❑❑

(भर्तृहरि वैराग्य शतक से संग्रहीत)

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/६/२०१५
भार- ४० ग्राम

जून 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

बही पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-110006 से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीता राम, दिल्ली-110006 से मुद्रित।